

आज-कल

समर्पण

श्री श्रद्धेय अमर शहीद स्वर्गीय कुल पिता

की पुण्य स्मृति में यह छोटा सा

"संग्रह"

सादर समर्पित है।



सम्पादक – ब्र० योगेन्द्र

उपसम्पादक – ब्र० धर्मराज

"भारत माता के लिए कुलपुत्रों को धन और तन की ही नहीं, मन के अर्पण करने की भी आवश्यकता है। उस के लिए ब्रह्मचर्य रूपी पूर्ण तप की आवश्यकता है। क्या तुमने उस तप का अनुष्ठान किया है?

यदि नहीं तो आज ही शुद्ध हृदय पूर्वक आरम्भ कर दो। तुम्हारे पुराने आचार्य को माता की सेवा में बलि देने के लिए तपस्वी पुत्रों की जरूरत है। क्या कोई आगे बढ़ेगा? जगत्पिता तुम सब पर तेज की वर्षा करें। यह मेरा हार्दिक आशीर्वाद है।"

(सम्वत् १९७९ की फाल्गुन कृष्णा १०
को पत्रिका से।

सम्पादकीय.



श्रद्धानंद

किसी देश या जाति का इतिहास उसमें उत्पन्न हुए २ महान व्यक्तियों के देश और जाति के लिए किये गये कार्यों के विवरण के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। जब किसी जाति के सौभाग्य से उस में कोई महापुरुष जन्म लेता है तो वह जाति के जीवन में एक प्रकार की क्रान्ति को पैदा कर देता है। यह क्रान्ति सर्वथा नवीन नहीं होती परन्तु बहुत कुछ जाति की तत्कालीन परिस्थिति का आवश्यक परिणाम होता है। महापुरुष जाति को इस क्रान्ति के लिए विचारों द्वारा जन्म देते हैं और क्रिया द्वारा इस क्रान्ति यज्ञ में स्वयं प्रथमाहुति देते हैं। और इस प्रकार अपने अनुयायियों का मार्ग प्रदर्शन करते हैं। किसी कार्य के लिए विचारों द्वारा क्षेत्र को तैयार करने और उस कार्य को सफल करने-

के लिए विशेष प्रकार की योग्यता की आवश्यकता होती है। स्वामी दयानन्द इस प्रकार की योग्यता से सम्पन्न थे। हिन्दू जाति के दारिद्र्यग्रस्त निर्जीव देह में जीवन संचार करने के लिए ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज का संस्थापन किया। इसके द्वारा प्राचीन अन्ध-परम्परा और अन्ध-विश्वास की जड़ें हिल गईं। लोगों को परम्परागत कुप्रथाओं के कटु अनुभव थे, परन्तु फिर भी उन के विरोध में कोई कुछ कहने का साहस न कर सकता था। हर एक वेदशास्त्र और स्मृतियों के आधार पर उन के पोषण का ही यत्न करता था। स्वामी-दयानन्द ने अन्धविश्वास की इस कच्ची और खोखली दीवार को नींवों का इतना जबरदस्त धक्का दिया जिससे इसकी हालत अब गिरी या तब गिरी की होगई। प्राचीन आर्यजाति जिसने अपने गौरव के दिनों में सारे संसार को आदर्श जीवन का मार्ग दिया था, समय के फेर से इस प्रकार की हीन दीन दशा को प्राप्त होगई थी कि उसका जीवन खतरे में पड़ गया था, विदेशी उसको

हृदय भी भाव में बैठे थे। ऋषि दयानन्द ने प्राचीन ऋषियों के सन्देश से उसमें जीवन फूंका और उसे आपत्ति का सामना करने के लिए कटिबद्ध किया। ऋषि ने विचारों के क्षेत्र में एक अद्भुत क्रान्ति को उत्पन्न किया और बताया कि किस प्रकार हमारी जाति ने बाल-विवाह और अस्पृश्यता आदि नाना रोगों को अपने हाथों दूध-पिला कर अपने घर में पाल पोस कर बड़ा किया है और उससे हमारे जातीय जीवन को किस प्रकार हानि पहुंच रही है। इस प्रकार ऋषि ने क्रान्ति का बीजारोपण किया, परन्तु वे इसको पनपता हुआ न देख सके। ऋषि के जीवन और सन्देश ने हजारों व्यक्तियों के हृदयों को प्रभावित किया परन्तु ऋषि के बाद, ऋषि के आदर्शों और विचारों को एकमात्र मूर्तरूप देने का प्रयत्न स्वामी श्रद्धानन्द ने ही किया। स्वामी जी एक कर्तव्य परायण धीर और लगन वाले व्यक्ति थे, ऋषि दयानन्द ने जिन कार्यों की ओर निर्देश किया उनको आरम्भ कर स्वामी श्रद्धानन्द ने उन को चरम सीमा तक पहुंचा दिया

देश में जो सामाजिक क्रान्ति ऋषि दयानन्द ने प्रारम्भ की थी स्वामी जी उनके बाद उसके एकमात्र प्राण थे। स्वामी जी ने अपने जीवन में जितने काम किये उन सब की सफलता का कारण उन की निर्भीकता, स्थिरता, कर्मनिष्ठता तथा ईश्वर में अटूट विश्वास ही था। सामान्य सांसारिक मनुष्य स्वामी जी के जीवन के इस कार्यकाल से एक बहुत बड़ा पाठ सीख सकते हैं। स्वामी जी में प्रारम्भिक जीवन में सब प्रकार की बुराइयें थीं परन्तु एक महापुरुष के संसर्ग ने उन में एक ऐसी अलौकिक ज्योति का सञ्चार किया था जिससे भटका और भूला हुआ सीधे रास्ते पर आ गया। आदर्श का अपने पूर्ण सामर्थ्य से अनुकरण करना, उसकी साधना के मार्ग में आये हुए कष्टों को सहर्ष झेलना आदि गुण थे जिनके कारण स्वामी जी अपने नीच और पतित जीवन से निकल कर एकदम पवित्र और ऊंचा जीवन बिताने के योग्य बन सके, और अपने को सच्चे अर्थों में कल्याण मार्ग का पथिक सिद्ध कर सके। —

जब से स्वामी जी ने सामाजिक जीवन में प्रवेश किया तब से उन्होंने अपने पद के योग्य कर्तव्यों को समझकर उनका पूर्णतया पालन किया। समाज के कार्य को अपने वैयक्तिक कार्य की अपेक्षा हमेशा ऊँचा स्थान दिया। और बहुत बार सामाजिक कार्य के लिए अपने वैयक्तिक कार्यों का त्याग तक भी कर दिया। इस लिए उन्होंने जनता की अपने प्रति प्रेम, विश्वास, और सद्भावनाओं को प्राप्त किया। स्वामी जी के सहयोगियों को उन के कार्य के प्रकार में चाहे उन से अनेक प्रकार के मतभेद रहे हों। इस कारण उन के स्वामी जी के साथ सम्बन्ध कुछ कटु भी होगये हों, परन्तु कभी भी किसी को स्वामी जी की सत्यता और सद्भावना पर सन्देह नहीं हुआ। यह स्वामी जी के जीवन की विशेषताएं थीं जिनके कारण परिस्थितियों ने, जिस क्षेत्र में भी वे गये, हमेशा आगे लाकर खड़ा कर दिया, और जनता ने भी हमेशा उनको अपना अगुआ और नेता कहने में गौरव अनुभव किया।

किसी जाति और देश की सामाजिक अथवा

राजनैतिक स्थिति का पता लगाना हो अथवा यह जानना हो कि कोई जाति अथवा देश सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से कितने गहरे पानी में है तो हमेशा दो बातों को जानने का प्रयत्न करना चाहिए। पहली बात यह कि वह जाति और देश किस प्रकार के आदर्शों से प्रेम करता है. दूसरी बात, जो पहली की अपेक्षा अधिक आवश्यक है, वह यह है कि वह देश और जाति किस प्रकार के जीवन वाले व्यक्तियों को अपना महापुरुष समझ कर पूजती है। महापुरुष ही जाति की तत्कालीन अवस्था को देख कर उसकी अभ्युन्नति के लिए आदर्श का निर्धारण करते हैं, और जाति को उन आदर्शों से प्रेम करना सिखाते हैं। और क्यों कि महापुरुष अपना सारा समय और परिश्रम जाति की सेवा में लगाते हैं इसलिए जाति भी उनका मान करती है और उनकी आज्ञा को हमेशा सिर-आंखों पर रखती है।. स्वामी श्रद्धानन्द इस युग के चुने हुए कुछ व्यक्तियों में से एक हैं। उन के जीवनकाल में सारा देश और विशेषतया आर्यजाति उन को अपना नेता मानती थी और उन के अभाव को अब भी बहुत तीव्रता से अनुभव करती है। आज भी देश के प्रत्येक कोने २ में हजारों ऐसे नरनारी मिल-

जायेंगे जो स्वामी श्रद्धानन्द के नाम पर बलि हो जाने को तैयार रहते हैं। स्वामी जी ने अपने जीवन काल में जब कभी किसी कार्य के लिए जनता से जन-धन की सहायता चाही तो जनता ने तन मन धन से उनकी सहायता की और कभी उन को अपनी ओर से निराश नहीं होने दिया। यह सब इस बात का सूचक है कि जनता को स्वामी जी पर कितना असाधारण प्रेम, और अटूट विश्वास था। और इससे यह भी पता लगता है कि जाति की इस समय की प्रधान आवश्यकता क्या है, जिसको सिद्ध करने में लगे होने के कारण स्वामी जी जनता के इतने अधिक-प्रेमपात्र और विश्वासपात्र बन गये थे। दस सालों के बाद आज महात्मा जी ने भी उस कार्य के महत्व को समझा है और अनेकों बार उस के लिए अपने प्राणों की बाजी तक लगा दी है। और अब इसके लिए सारे देश में दौरा-लगा रहे हैं। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि वह महत्वपूर्ण कार्य अछूतोद्धार ही है; स्वामी जी की यह बड़ी अभिलाषा थी कि दीनहीन दलित कहलाये जाने वाली जातियों को सवर्ण हिन्दुओं के क्रूर अत्याचारों से-

इस प्रकार मनुष्योचित अधिकार के स्वतन्त्र जीवनप्रद और सुखद वायु-मण्डल में हमेशा के लिए विचरने का अधिकार प्रदान कराया जावे।

स्वामी जी ने ही कांग्रेस के प्लेटफार्म पर सबसे पहले अछूतोद्धार के प्रस्ताव को रखा, परन्तु पहले वर्ष उसकी उपेक्षा की गई, + दूसरे वर्ष उसको प्रस्तावों में जगह दी गई। महात्मा गान्धी ने अपने सत्याग्रह के सिद्धान्त में सत्य, अहिंसा के साथ अछूतोद्धार को भी स्वामी जी के प्रयत्न से स्थान दिया। इतना होने पर भी कांग्रेस ने फिर भी इसकी ओर पर्याप्त ध्यान न दिया। महात्मा गांधी ने बारदौली को सत्याग्रह के लिए तैयार किया था, वहां जाकर स्वामी जी को यह देख कर बहुत दुख हुआ कि चर्खे और खादी का तो पर्याप्त प्रचार है, परन्तु अछूतों की समस्या अब तक भी वैसी ही है। इसकी ओर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया गया। इसके बाद भी स्वामी जी ने कांग्रेस को अछूतोद्धार के काम में लगाने के लिए अपना प्रयत्न जारी रखा। इन के प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप कांग्रेस ने सब चार सदस्यों की उपसमिति अछूतोद्धार के कार्य के लिए बनाई जिसका प्रधान स्वामी जी को बनाया गया था।

उसके लिए एक वार्षिक धनराशी निश्चित कर दी गई। स्वामी जीने कार्य प्रारम्भ करने के अवसर पर कांग्रेस से कुछ धन-राशी नकद मांगी, तो उनको ऐसा प्रतीत हुआ कि कांग्रेस के अधिकारियों की इस दिशा में धन व्यय करने की — इच्छा नहीं है। इस प्रकार अछूतोद्धार के प्रति कांग्रेस का यह रुख देख कर स्वामी जी ने हिन्दू जाति को संगठित करने के लिए, स्वतंत्र रूप से अछूतोद्धार के लिए प्रयत्न करना शुरू किया। स्वामी जी की हिन्दू जाति के संगठन का उद्देश्य अधिकतर राष्ट्रीय ही था जातीय नहीं। वह हिन्दू जाति को इस लिए नहीं संगठित करना चाहते थे कि हिन्दू प्रबल हो कर अल्पसंख्यक जातियों को हड़प कर भारत में एकमात्र हिन्दूराज्य के लिए प्रयत्न करें अपितु संगठित होकर भारत में विदेशी राज्य का तख्ता उलटने में अधिक समर्थ हो सकें। परन्तु उनके समय के लोगों ने उन को इस समय ठीक नहीं समझा, जिस का परिणाम एक धर्मान्ध मुसलमान के हाथ से उन की हत्या है। स्वामी जी की इस प्रकार की मृत्यु ने +

उनके राष्ट्रीय स्वरूप पर एक काला पर्दा डाल दिया है और उनको एक संकुचित धार्मिक व्यक्ति का रूप दे दिया है । स्वामी जी हिन्दू जाति के अंग थे और आर्यजाति के हृदय-सम्राट् थे । परन्तु उनके राष्ट्रीय विचारों पर जातीयता का दाग़ न था । उनका हृदय उदार था वे भारत माता को परतन्त्रता-पाशों से जकड़ा हुआ न देख सकते थे । इस लिए जहां कहीं भी अधिकारों की रक्षा का प्रश्न उपस्थित हुआ स्वामी जी ने अपनी छाती तान दी, और आगामी आपत्ति की सम्भावना से ज़रा भी विचलित नहीं हुए । गुरु के बाग़ में जब अधिकारों की रक्षा के लिए जब सिक्खों का सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ तब स्वामी जी ने उनका साथ दिया और इस कारण उन्हें एकबार जेल की तीर्थ यात्रा भी करनी पड़ी । महात्मा जी ने जब असहयोग का आन्दोलन प्रारम्भ किया तब देहली में इस आन्दोलन के एक मात्र 'आधार' स्वामी जी ही थे । वहां ही स्वामी जी ने नंगी संगीनों के सामने अपनी छाती को खोल कर अपनी निर्भीकता और साहस का एक अद्वितीय और भारत के स्वातन्त्र्य संग्राम में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य कार्य कर

दिखाया । इन्हीं दिनों में जब हिन्दू और मुसलमान परस्पर दूध-में पानी की तरह एक हुए थे इस दिव्य पुरुष ने देहली की जामामस्जिद में वेद-मंत्र की व्याख्या के साथ२ हिन्दू मुसलमानों को राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संग्राम में साफल्य लाभ करने के लिए एकता का पाठ सिखाया था । क्या यह संभव है कि वह व्यक्ति जिस को किसी दिन एकता का सन्देश हर समझ कर मुसलमान मौलवियों ने अपनी मस्जिद में निमन्त्रित किया हो, छः सात साल के बाद उनका इतना विरोधी बन गया हो कि उन मुसलमानों को उसका इस संसार में अधिक जीवित रहना अपने धर्म के लिए खतरनाक प्रतीत होने लगा हो ? नहीं, कभी नहीं । यह सब कुछ इने गिने लोगों की गलतफहमी है और उस महात्मा की भावना को न समझने का ही कुरूप परिणाम है । जो हुआ, सो हुआ ही, आखिरकार वह स्वामी अपने देशवासियों के लिए जिया और देशवासियों के लिए ही मरा । उसकी विजयी और शहीद आत्मा भारतीय आत्मा को हमेशा कर्तव्य मार्ग का उपदेश दिया करेगी ।



नैपोलियन जन्म गृह

आर्य समाज और गुरुकुल.

गुरुकुल स्वामी जी की एक अपार कृति है। स्वामी जी के जीवन का अन्तिम भाग अछूतोद्धार के कार्यों में लगा है तो पहला भाग गुरुकुल के संपादन और उसे दृढ़ नींव पर खड़ा करने के प्रयत्न में ही व्यतीत हुआ है। गुरुकुल उनके प्रयत्नों का एक उत्कृष्ट परिणाम है। अपने जीवन के अन्तिम समयों में यद्यपि उन का गुरुकुल से कोई [illegible] अधिकारी के रूप से सम्बन्ध न था परन्तु फिर भी उन्हें गुरुकुल से प्रेम था। क्योंकि गुरुकुल उनका था - गुरुकुल उनका ही लगाया हुआ पौधा था। गुरुकुल के लिये स्वामी जी ने जो कुछ भी अपना था सब उस पौधे का सब दे दिया। अपनी धन सम्पत्ति, अपने हृदय के टुकड़े - दो पुत्र और अपना सारा जीवन उन्होंने गुरुकुल माता की सेवा में लगा दिया। इसलिये यथार्थ रूप में कुलपिता थे। आज दिन तक कुल पुत्र उस कुल पिता की स्मृति में श्रद्धाञ्जलि

मना रहे हैं। उस शुभ अवसर पर हम कुल पिता के श्री चरणों में अपनी श्रद्धांजलि सादर समर्पित करते हैं।

इस अवसर पर हम गुरुकुलवासियों का कर्तव्य है कि हम आत्म-निरीक्षण करें कि हमारी यह संस्था अपने गत जीवन में किस प्रकार की रही है और अब इसकी गति किस दिशा की ओर है। जिन उद्देश्यों और आदर्शों की पूर्ति करने के लिए इसकी संस्थापना की गई थी उन उद्देश्यों और आदर्शों की ओर इसने कितना कदम बढ़ाया है और किस अंश में उन आदर्शों के पूरा करने में यह असफल रही है। इस प्रकार के निरीक्षण का फल यह होता है कि संस्था में धीरे-धीरे प्रवेश कर रही बुराइयों की ओर ध्यान दिया जाता है और उन्हें दूर करने में हम विशेष प्रयत्नशील होते हैं। वहाँ साथ ही साथ संस्था का क्या महत्त्व और उपयोगिता है यह भी स्पष्ट हो जाता है।

यह सत्य है कि गुरुकुल आर्यसमाज की संस्था है, राष्ट्रीय-महासभा की संस्था नहीं। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि गुरुकुल में राष्ट्रीय भावों की अवहेलना की जाती है या उसको किसी प्रकार राष्ट्रीय संस्था की अपेक्षा कम महत्त्वपूर्ण

समझा जाता है। गुरुकुल असहयोग आंदोलन से बीस साल पहले ही गवर्नमेण्ट से बिना किसी प्रकार की सहायता लिये स्थापित किया गया था; और अब तक कभी भी गुरुकुल की स्वामिनी सभा ने गवर्नमेण्ट से सहायता लेने का विचार तक भी नहीं किया; इसी कारण से ही गवर्नमेण्ट का पहले पहल गुरुकुल से बहुत भय था। गुरुकुल की पुरानी फाइलों में गुरुकुल के रहस्य और - उस प्रकृति को जानने के लिये भिन्न २ वर्षों में गुप्तचरों का तांता सा लगा रहता था। गवर्नमेण्ट की एक गुप्त - रिपोर्ट में इस मत की पुष्टि में लिखा है कि - "सरकार के सम्मुख सब से अधिक विचारणीय प्रश्न यह है कि इस समय - आर्यसमाज के गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करने वाले उपदेशकों का शिक्षा समाप्त करने के बाद सरकार के प्रति क्या रुख होगा?" आर्यसमाज ने आज से तीस साल पहले गवर्नमेण्ट के साथ गुरुकुल के रूप में असहयोग क्यों प्रारम्भ किया था? अगर इसका कारण - खोजा जाता है तो आर्यसामाजिक जगत् गुरुकुल से क्या २ आशायें रखता था और अब भी रखता है - इसको जानने की आवश्यकता है।

आजकल

आर्य समाजियों ने अनुभव किया कि स्वामी दयानन्द जिन आदर्शों और सिद्धान्तों का समाज में प्रचार करना चाहते थे उनका प्रचार - गवर्नमेंट के स्कूलों और कालेजों से होना असम्भव है, गवर्नमेंट की शिक्षा प्रतिवैदिक आदर्शों और सच्ची भारतीयता के प्रतिकूल है। स्कूलों और कालेजों में शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी प्राचीन भारतीय संस्कृति को बहुत ही हेय और उपहास्यास्पद समझने लगते हैं। उनमें अपनी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के प्रति प्रेम नहीं होता। पाश्चात्य सभ्यता की बाहरीय चमक दमक उनकी आंखों को - चकाचौंध कर देती है। उनमें एक मानसिक और बौद्धिक दासता घर कर जाती है और साथ ही मौलिकता सर्वथा विनष्ट हो जाती है। जिससे वे सभ्यता और विचारों के क्षेत्र में पाश्चात्य लोगों का - अन्धानुकरण करने लग जाते हैं और इसी में ही अपना गौरव समझते हैं। गुरुकुल का उद्देश्य वैदिक सभ्यता और वैदिक धर्म का पुनरु- ज्जीवन है और विद्यार्थियों को सच्चा आर्य बनाना है। गुरुकुल की - नियमावली में गुरुकुल का लक्षण इस प्रकार किया गया है :-

" गुरुकुल उस वैदिक शिक्षणालय का नाम है जिसमें बालक और बालिकाओं यज्ञोपवीत वेदारम्भ संस्कार के पश्चात् ब्रह्मचर्य पूर्वक -

शिक्षा के बिना प्राप्त करें । इसके अतिरिक्त आर्यसमाज जिस वर्णव्यवस्था को एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था समझता है उसके कायम करने की भी गुरुकुल से ही आशा की जाती थी । स्वामी जी ने गुरुकुल की संस्थापना से पूर्व "गुरुकुल की क्या आवश्यकता है" पर लिखते हुए अपने पत्र 'सद्धर्म प्रचारक' में लिखा था कि आश्रम व्यवस्था के बिना वर्णव्यवस्था कायम नहीं हो सकती क्योंकि आश्रमों पर वर्ण निर्भर हैं; जब गुरुकुल नहीं है तो आश्रम-पद्धति का उद्धार कैसे हो । इस उद्देश्य से यह भी स्पष्ट है कि गुरुकुल के जीवन का सार ब्रह्मचर्य है । गुरुकुल का उद्देश्य केवल उच्च प्रकार की शिक्षा का प्रचार नहीं है परन्तु त्यागी, तपस्वी और आचार सम्पन्न ब्रह्मचारी पैदा करना है जिन उच्च जीवनों से अन्य लोग भी शिक्षा प्राप्त कर सकें ।

गुरुकुल अब अपने परीक्षण के समय को पार कर चुका है, अब यह संसार के सामने एक स्थिर संस्था के रूप में है । हमने यहाँ विचार करना है कि गुरुकुल ने अपने तीस साल के अरसे में आर्य-समाजियों की अभिलाषाओं को कहाँ तक पूरा किया है ? इसका -

उन्हें हमें स्वयमेव न निर्धारित कर लेना चाहिये, परन्तु उन लोगों-
से — जिनके खून की गाढ़ी कमाई का परिणाम गुरुकुल है, जो गुरुकुल
के संस्थापना के काल से ही तृषित नयनों से उसकी ओर ताक-
रहे हैं — पूछना चाहिये कि जिस गुरुकुल को आपने अपने अविश्रान्त
प्रयत्नों से जन्म दिया है, अब उसमें शिक्षा प्राप्त पर्याप्त स्नातक
आदि के सम्मुख आ चुके हैं। क्या उन को पा कर आप अपने को
धन्य मानते हैं, और समझते हैं कि आपको अपने परिश्रम का-
उचित फल मिल गया है? और क्या अब आप उसी उत्साह से
गुरुकुल की सहायता करने को तैयार हैं। आर्य जनता के इन-
प्रश्नों के उत्तरों पर ही हम गुरुकुल की सच्ची सफलता या-
असफलता को समझते हैं। जो उपाध्याय वर्ग या अन्य व्यक्ति -
गुरुकुल के लिये धनसंग्रह के लिये लोगों के पास जाते हैं।
उनको मालूम है कि गुरुकुल के बारे में लोगों की क्या सम्मति
बनती जा रही है।

चाहे गुरुकुल ने मातृभाषा को माध्यम बना कर तथा-
शिक्षणालय को शहर के दूषित वातावरण से दूर रख कर भारत के
शिक्षा क्षेत्र में अद्भुत क्रान्ति पैदा कर दी हो, परन्तु इससे गुरुकुल

की सच्ची सफलता सिद्ध नहीं होती। गुरुकुल अपनी शिक्षा पद्धति-
में इस प्रकार की नवीनता के होते हुए भी अगर आर्यसमाजियों के
हृदयों को सन्तुष्ट कर सकता तो अपने आदर्शों की दृष्टि से सफल
कहा जा सकता था। परन्तु जब हम यहां में जाते हैं तो वहां आर्य-
समाजियों के गुरुकुल के प्रति निराशाजनक विचार सुनकर हमें
यह बाधित होकर कहना पड़ता है कि गुरुकुल ने आर्यसमाजियों
की आशाओं को किसी भी अंश में पूरा नहीं किया। गुरुकुल के
अधिकांश स्नातक जिस किसी क्षेत्र में भी गए हैं, वे उसी में ही फंस
गये हैं, उसमें रहते हुए उन्होंने समाज के प्रति अपने कर्तव्य
को ज़रा भी अनुभव नहीं किया और वे हमेशा आर्यसमाजियों
के कार्यों से दूर ही रहने का प्रयत्न करते रहते हैं। बहुतों की -
सम्मति है कि — गुरुकुल के स्नातकों के जीवन में कोई आकर्षण-
नहीं है और नाहीं उनका जिस समाज में वे रहते हैं कोई प्रतिष्ठित
पद है। आर्यसमाजियों को इस बात का भी बहुत दुःख है कि
गुरुकुल के प्राय. सब स्नातक आर्यसमाज के प्रमुख सिद्धान्तों-

में और ईश्वर तक में भी विश्वास नहीं रखते।

इस सब का यह कारण हो सकता है कि गुरुकुल की शिक्षा-प्रणाली इन आदर्शों की दृष्टि से कम पुष्ट हो, अथवा गुरुकुल के स्नातकों को आर्यसमाज के वर्तमान कार्यक्रम में जीवन न प्रतीत होता हो और यह कल्पना असाम्प्रदायिक प्रतीत होता हो, परन्तु आज-आर्यसमाज का वर्तमान कार्यक्रम जीवन रहित और आसामयिक है तो स्नातकों का यह कर्तव्य नहीं है कि उससे सर्वथा उदासीन हो जावें अपितु उनका कर्तव्य है कि उसमें सुधार कर जीवन का संचार करें जिससे आर्यसमाज स्वामी दयानन्द के दर्शाये मार्ग पर-चलता हुआ संसार का अधिक से अधिक उपकार कर सके। परन्तु दुःख तो यह है कि इनके हृदयों में आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द से सच्चा प्रेम नहीं है। इनमें से प्रायः सब आर्य-समाजी मातापिताओं के लड़के हैं, हम जानते हैं इनके माता-पिताओं की आर्यसमाज के सिद्धान्तों में कितनी श्रद्धा है। इन-में उसका एक शतांश भी नहीं है। इनमें बहुत से स्नातक आदि आर्यसमाज के सिद्धान्तों के विरुद्ध अपने भावों को प्रकट करते

में आत्म गौरव अनुभव करते हैं। इससे आर्यसमाजियों के हृदयों को कितनी चोट पहुंचती होगी यह बताने की आवश्यकता नहीं। यदि गुरुकुल ने इस ओर पर्याप्त ध्यान न दिया तो कुछ सालों में ही गुरुकुल आर्यसामाजिक जगत् की अपने प्रति सहानुभूति को सर्वथा खो बैठेगा और तब इसका अधिक देर तक जीवित रहना असम्भव हो जायगा। आर्यसामाजिक जगत् ने अपनी शक्ति का बहुत बड़ा भाग गुरुकुल पर खर्च किया है, और इसी कारण से ही अन्य कार्यों की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे सका। परन्तु गुरुकुल उसके लिये वैसे असफल सिद्ध हो रहे हैं जैसे D.A.V. colleges असफल सिद्ध हो चुके हैं। इसलिये गुरुकुल के अधिकारियों से हमारा निवेदन है कि इस विषय को उपेक्षा योग्य न समझकर इसके कारणों पर गम्भीरता से विचार करें जिससे गुरुकुल भविष्य में खतरे में पड़ने से बच जाए।

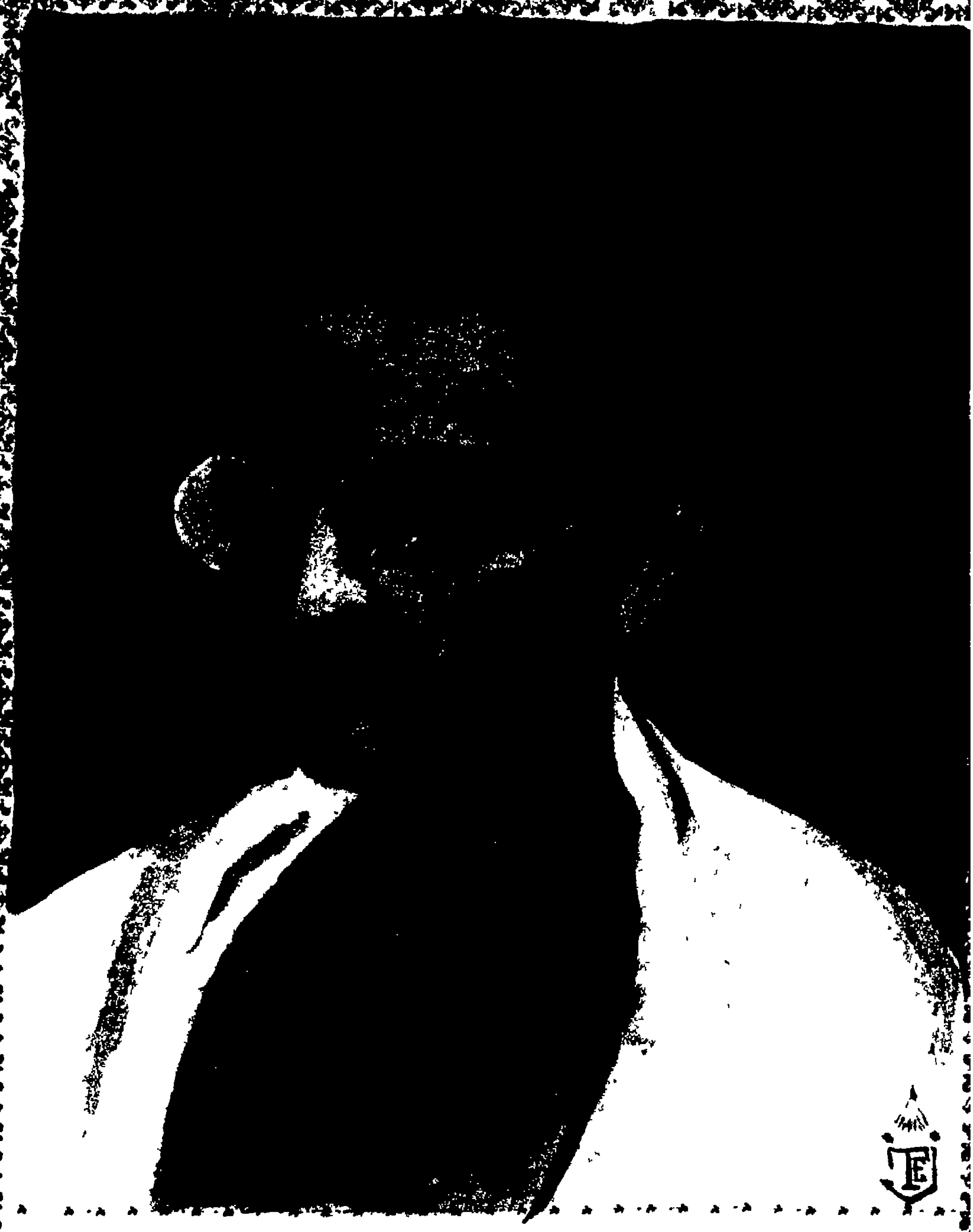
गुरुकुल की यह समालोचना हमने आर्यसमाज के दृष्टि-बिन्दु से ही की है। राष्ट्रीय और देशहित की दृष्टि से तथा आदर्श शिक्षा प्रणाली की दृष्टि से गुरुकुल सफल रहा है या -

नहीं। इस विषय में स्थान तथा समय के अभाव से कलम उठाना नहीं चाहते।

इस समालोचना में हमने केवल गुरुकुल के दोष ही बताये हैं। इसका यह मतलब नहीं कि गुरुकुल में कोई गुण नहीं है। गुणों का वर्णन इसलिये नहीं किया क्योंकि इनको सब जानते ही हैं और उनके लिखने की कोई विशेष उपयोगिता भी नहीं है।

हमारे विचारों से बहुत से भाई असन्तुष्ट होंगे परन्तु जब यह ध्यान में रखेंगे कि हमने जो कुछ भी लिखा है सब आर्यसमाज के दृष्टि बिन्दु से लिखा है, तो उन्हें हमारी सम्मति बहुत असन्तोषजनक नहीं प्रतीत होगी।

सन्देश.



महात्मा गान्धी जी

श्रद्धानन्द-सप्ताह में हम सब श्रद्धानन्द जी महाराज के हरिजन प्रति के प्रेम का शुद्ध अनुकरण करें।

2 आजाद ।

श्री प जवाहर लाल जी नेहरू

आप को मै क्या सन्देश भेजूं ? श्रद्धानन्द जी का नाम याद कर के बहादुरी, हिम्मत और त्याग की तसवीर सामने आ जाती है और उस तसवीर को देख कर कुछ अपनी भी हिम्मत बढ़ जाती है। गुरुकुल के विद्यार्थी तो उनके ही बच्चे हैं और उनके सामने तो हमेशा यह तसवीर रहती होगी तो उनको और क्या सन्देश दिया जावे हमारे देश में आज कल स्वतन्त्रता का युद्ध जारी है और हर एक भारत वासी को वीरता की आवश्यकता है। मैं आशा करता हूं कि गुरुकुल के सब विद्यार्थी स्वामी श्रद्धानन्द जी की याद कर के वीर सिपाही बनेंगे और देश की आजादी की लड़ाई में भाग लेंगे।



श्री पं॰ मदन मोहन जी मालवीय.

दूध पीओ विद्या पढ़ो और जपो हरि नाम.
सदाचार पालन करो पूरेंगे सब काम ॥.

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया.
देशभक्त्यात्म त्यागेन सम्मानार्हो भवेन्नरः ॥.

श्री आचार्य रामदेव जी.

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज बहुत सी बातों पर बल देते थे पर वे जिस एक बात पर सबसे अधिक बल देते थे वह ब्रह्मचर्य की बात थी। मैंने जितने गुरुकुल के जन्मोत्सवों पर स्वामी जी के भाषण सुने हैं वे सदा ब्रह्मचर्य पर बल देते थे। ब्रह्मचर्य को गुरुकुल का मूलाधार बतलाते थे। इसलिये कुलपिता श्रद्धानन्द जी के पुण्य स्मृति के दिन जो बात मैं कुलपुत्रों को कहना चाहता हूँ वह यही है वे आज आत्म-निरीक्षण करें, देखें और सम्भलें हमने इस दिशा में कितनी उन्नति की है; निश्चय करें, दृढ़ संकल्प करें कि हमने ऊंचे ब्रह्मचारी, सदाचारी, संयमी और पुण्यात्मा बनना है। यही कुलपिता श्रद्धानन्द का सर्वोत्तम स्मरण करना है।

श्री आचार्य विधुशेखर जी भट्टाचार्य

स्वामी श्रद्धानन्द सत्य के सच्चे पुजारी थे। सत्य ही के लिये वे जिये, सत्य ही के लिये मरे। सत्य उनके जीवन का मूल मन्त्र था।

स्वामी श्रद्धानन्द सच्चे क्षत्रिय थे। मशीनगनों के सामने छाती खोल कर खड़े हो जाना उन्हीं का काम था। शुद्धि और संगठन उनके जीवन का व्रत हो गया था। इस महाव्रत के पालन के लिये उन्होंने अपना वृद्ध और जर्जर शरीर अत्याचारी की गोलियों को भेंट कर दिया! वे शूर थे।

स्वामी श्रद्धानन्द सच्चे तपस्वी थे। उनकी तपस्या का मूर्तरूप गुरुकुल अपूर्व है।

स्वामी श्रद्धानन्द सच्चे आर्य थे, सच्चे हिन्दू थे, सच्चे मनुष्य थे। उनकी आर्यसामाजिकता, हिन्दुत्व और मनुष्यत्व में कोई विरोध नहीं था। वे जो कुछ थे सच्चे थे।

हिन्दू जाति को स्वामी श्रद्धानन्द पर अभिमान है।

श्री सुन्दर लाल जी :

इतने भर जांय कि उनमें क्रोध, द्वेष अथवा घृणा के लिये कोई स्थान ही न रहे। यदि यह सम्भव हो तो अकेले गुरुकुल के विद्यार्थी ही भारत की साम्प्रदायिक समस्या को हल कर डालने के लिये काफी हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारे पूज्य कुलपिता की दिवंगत आत्मा इस तरह के पवित्र प्रयत्न में हमारी सहायक होगी।

श्री नारायण स्वामी जी

मनुष्य को गिरावट से उठा कर ऊंचा बनाने का प्रारम्भिक और श्रेष्ठ साधन आत्म निरीक्षण (Self Intro-spection) है इसी से उसे अपनी कमियों और कुचेष्टाओं का ज्ञान होता है जिस से आत्म ग्लानि उत्पन्न होती है और यह ग्लानि उन अवगुणों के छुड़ाने का कारण बनती है इसलिये सभी ब्रह्मचारियों को इस सुनहरे नियम को आचरण में लाकर इस से लाभ उठाना चाहिये।

श्री गंगाप्रसाद जी चीफ जज टिहरी

गुरुकुल का स्थापन तथा शुद्धि और अछूतोद्धार आदि उनके स्वामी श्रद्धानन्द जी के ऐसे कार्य हैं जो आर्य-समाज के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे जायेंगे। इनके अतिरिक्त उनका अपूर्व त्याग, अदम्य उत्साह और साहस, असाधारण निर्भीकता आदि ऐसे अनेक गुण हैं जिनसे उनका चरित्र सब के लिये सदा अनुकरणीय रहेगा। परम पिता परमेश्वर ऐसा आशीर्वाद देवे कि आप और आप के गुरुकुलवासी उनका अनुकरण करते हुए भारतमाता और वैदिक धर्म की सेवा के योग्य बनें।

श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी

स्वामी श्रद्धानन्द जी के अन्त समय के दो कार्य थे, शुद्धि और अछूत निवारण। आप उनके श्रद्धालु हैं अत: तन मन से इन दोनों में पूर्ण सहयोग दें और अपने जीवन में वैदिक संस्कृति के प्रसार में यत्नवान रहें।

श्री पं. ठाकुरदत्त जी 'अमृतधारा'

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ब्रह्म मुहूर्त में उठ कर नित्य कर्म से निपट कर सूर्योदय से पहले काम के वास्ते तय्यार हो जाया करते थे। उनका हृदय बड़ा सरल था। एक बालक भी उन से बात करने लग जाय तो बड़े प्रेम से उसके सामने हृदय खोल कर रख देते थे।

वह सच्चे कर्मवीर थे। कार्य से थकते न थे। कर्तव्य पालन के वास्ते हर कुर्बानी को तय्यार हो जाते थे। खान पान में बहुत सादा थे। दूध अवश्य पिया करते थे। लाल मिर्च का कदापि सेवन नहीं करते थे। व्यायाम अवश्य करते थे।

वह श्रद्धावान थे, प्रभु के भक्त थे। आपके चरण चिन्हों पर चलने का यत्न करना ही उनकी सच्ची स्मृति है।

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी

श्री स्वामी शहीद श्रद्धानन्द जी का बलिदान दिवस एक पुण्य दिवस है। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का जीवन आदर्श जीवन था। कुलवासियों को ही उनका जीवन मार्गदर्शक था ऐसा नहीं अपितु नागरिक जनों के लिये भी वह मार्ग दर्शक हो सकता है। ऐसे पुण्यात्मा का बलिदान दिवस निःसन्देह अन्य मनुष्यों में आत्म समर्पण का भाव उत्पन्न कर सकता है। गुरुकुल का वायुमण्डल पहले से ही पवित्र और मङ्गल रूप है। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के पुण्य स्मरण से उसकी पवित्रता अधिक हो सकती है। आशा है कि कुल के सब ब्रह्मचारी स्वामी श्रद्धानन्द जी का आदर्श जीवन अपने सम्मुख रख कर उनका त्याग भाव अपने जीवन में ढालने का प्रयत्न करेंगे और कृतार्थ होंगे।

परमेश्वर स्वामी श्रद्धानन्द जी के गुरुकुल सम्बन्धी मनोरथों को पूर्ण करें और सब ब्रह्मचारी गण आदर्श ब्रह्मचारी बन कर उनकी आत्मा को सफल मनोरथ बनावें।

श्री म० कृष्ण जी B.A

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी उन महापुरुषों में से थे जिनके जीवन का एक २ क्षण संसार के उपकार में व्यतीत हुआ. स्वामी जी के बलिदान दिवस की पुण्य स्मृति में मैं गुरुकुल के विद्यार्थियों को इससे अधिक क्या सन्देश दे सकता हूँ कि अगर आप कुलमाता के सच्चे सपूत और श्रद्धानन्द के सच्चे शिष्य कहलाना चाहते हैं तो वैदिक धर्म, वैदिक सभ्यता और वैदिक शिक्षा को किसी अवस्था में भी अपनी दृष्टि से ओझल न होने दें। और जिस किसी अवस्था में भी रहें इस बात को सदा सामने रखें कि आप उस वीर के शिष्य हैं जिसने धर्म की रक्षा के लिये अपने प्राणों को न्योछावर किया।

श्री प्रो॰ इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

"मेरे जन्म और दीक्षा के गुरु ने अपने जीवन में अनेक सार्वजनिक कार्यों में भाग लिया, और अनेक संस्थायें स्थापित कीं, परन्तु जिस संस्था को उनके आदर्शों और उनकी उमंगों का पूर्ण प्रतिनिधि कह सकते हैं, वह केवल गुरुकुल है। प्रबन्ध से कोई सम्बन्ध न रहते हुए भी, और इतने वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी मेरे हृदय में इस समय यदि कोई अभिलाषा अर्द्ध जागृत अवस्था में बनी रहती है, तो वह गुरुकुल में निश्चिन्तता से विचरने की और उसे 'अपना' कह कर पुकारने की है। अन्यों की बात तो मैं कह नहीं सकता, परन्तु गुरुकुल के स्नातक के हृदय की बात मैं जानता हूँ कि वह गुरुकुल भूमि, गुरुकुल विश्वविद्यालय, और गुरुकुल नाम के एक एक अंश में श्रद्धेय कुलपति को व्याप्त रूप देखता है। कुलपति ने अपने शिष्यों को सदाचार, स्वाधीनता और सज्जनता के जो घूंट

चिलाये थे, गुरुकुल उनका प्रतिनिधि है। प्रत्येक कुलपुत्र के दो कर्तव्य हैं। वह उन बूंदों की लाज रखे। अपने जीवन में उन आदर्शों को ओत प्रोत कर दे, जिनकी जागृति के लिये कुलपति ने कुल की स्थापना की और उन आदर्शों के पुञ्ज गुरुकुल की हित कामना और हित साधना के लिये सदा यत्नवान बना रहे। संसार के धन्धों और सार्वजनिक उलझनों में अत्यन्त उलझे रहने पर भी मैं प्रायः यह स्वप्न देखा करता हूं कि मैं फिर गुरुकुल में पहुंच गया हूँ। ब्रह्मचारियों के साथ क्रीड़ाक्षेत्र का आनन्द ले रहा हूँ, और गुरुकुल माता की किसी तुच्छ सेवा से अपने जीवन को सार्थक बना रहा हूं।"

श्री पं॰ चन्द्रमणि जी विद्यालंकार

कुल पिता के सम्पूर्ण जीवन का सार गुरुकुल था। यदि सब कुलबन्धु विशेषतया वे जो इसके अधिकारी ब्रह्मचारी व अन्य निवासी हैं अपना २ कर्तव्य समझते हुए इसका तदनुकूल सञ्चालन करें तो निस्सन्देह उस कुल पिता की जीती जागती दिव्य मूर्ति विद्यमान रहेगी जिससे अनेकों भूले भटके प्राणी अपना कल्याण कर सकेंगे। त्याग, तप, संयम, सत्साहस, प्रेम और पारस्परिक समता व विश्वास ही उस महात्मा के मूल मन्त्र हैं।

श्री आचार्य देवराज जी 'मुनि' विद्यावाचस्पति

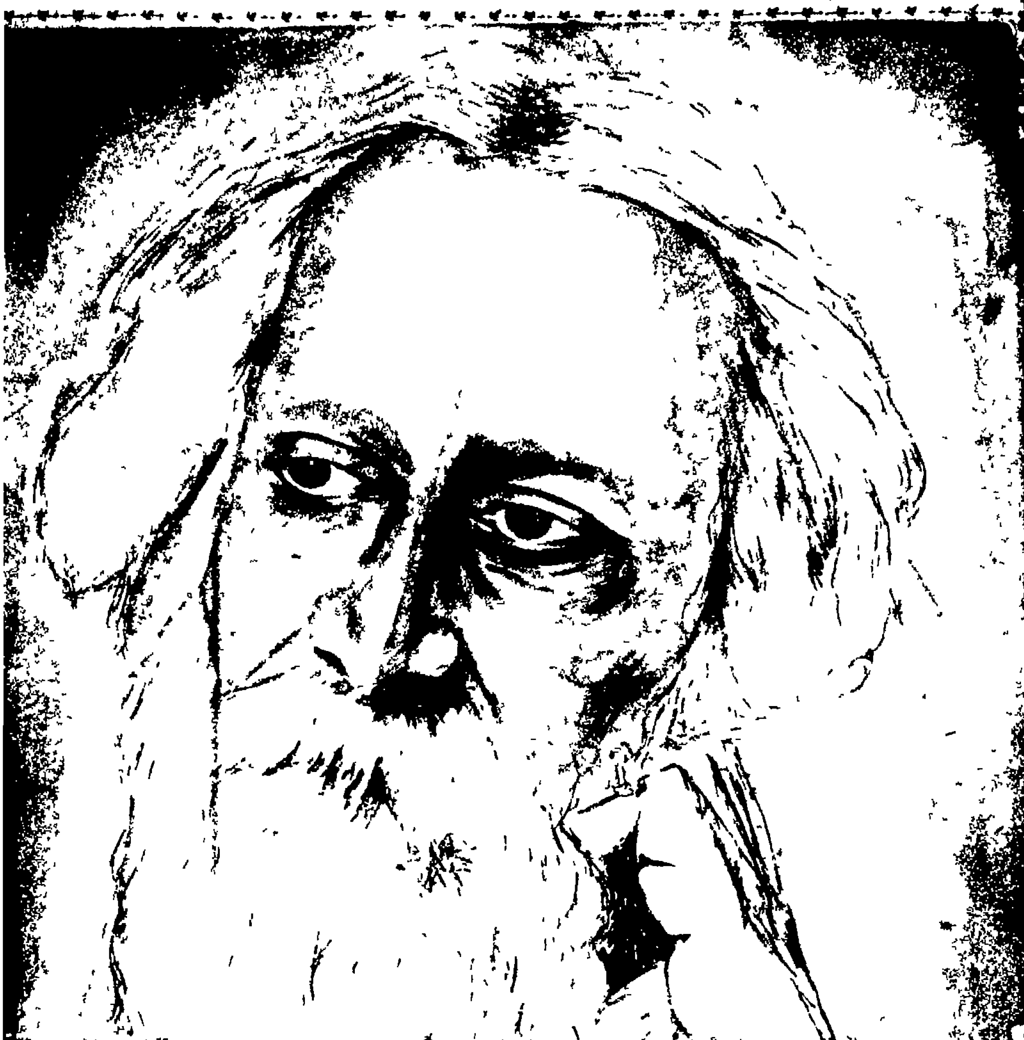
विचार, उच्चार, आचार और प्रचार में वीरता का निदर्शक हमारे कुलपिता का जीवन हमारी स्मृति में सर्वदा बने रहें और हम अपने जीवन-पथ में सर्वदा वीरों के समान विजय प्राप्त करते रहें।

श्री स्वा॰ धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति 'बंगलौर'

श्री स्वामी जी का वैयक्तिक जीवन अत्यन्त पवित्र, निर्मल और नियमित था। उनके विशुद्ध प्रेम, दया और सहानुभूति की कोई सीमा न थी। मंगलमय जगदीश्वर और वैदिक धर्म में उनकी अगाध श्रद्धा थी। हम सब कुल बन्धु अपने जीवनों को श्रद्धामय, सत्यमय और कर्तव्य परायण बनावें।

श्री स्वा. कृष्णदत्त जी आयुर्वेदालंकार फैजाबाद.

स्वामी जी का जीवन अनोखा, निराला था और जो कुछ भी कहा जाय थोड़ा है। इस पवित्र अवसर पर यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि जिस मिशन के लिये वे जिये और मरे तथा उसके लिये तरह २ के कष्टों को जिन्दगी में सहा उस मिशन को अमर बना देने की जिम्मेवारी हमीं लोगों पर है।



C.Y.CHINTAMANI.(ALLAHABAD)

Swami Shraddhananda was a great soul who did very much for the elevation of the Hindu community, and his memory is justly held in high esteem by everyone who knew him or of him and his great work. I join you all in paying our tribute of respect to his honoured memory.

FROM SHANTINIKETAN.

Dear Sir,

I am desired by Rabindranath Tagore to thank you for your invitation to the death anniversary celebrations of Swami Shraddhanandaji on the 6th December next. Unfortunately it will not be possible for him to do so, as on that day, he has an engagement to deliver a lecture at the Andhra university, Waltair.

The Poet is down with influenza and can--not write himself. As we all know he has great admiration for the burning patriotism and selfless

৪৪

devotion of the great Swami. He is confident that the martyrdom of one like him would never go in vain.

Yours faithfully,

Sd/- Anil K. Chanda.

Secretary to

Rabindranath Tagore.

PROFESSOR BENOY KUMAR SARKAR, CALCUTTA.

Shraddhananda Ji was a great remaker of mankind. The Punjab can reasonably be proud of his services to Northern India as a worker in the lines of the remarkable master Dayananda. It is in and through the activities of energists like Shraddha-nanda that Young Bengal has learnt to respect the ideals and methods of the Arya Samaj. Shraddhananda will remain a permanent figure of modern India in the consciousness of the Bengali people.

S. SATYAMURTI, MADRAS.

He was a great Hindu. but he profoundly believed that slaves can have no religion. That is why he worked strenuously for the freedom of Bharatavarsha. We, Hindus, therefore can best follow in his foot steps if, remaining loyal Hindus, contribute our share in the Motherland's struggle for her freedom. We have a great responsibility to fulfil. We are the majority community in the country. But the minorities are today the favourities of the British Government. Anger must not cloud our vision. While insisting on our legitimate rights, we must show by example to the minorities that because we are Hindus, no minority had anything to fear from us. By thus earning their love and their affection, we shall have won swaraj for India and created a more

honoured place for Hinduism in a free India.
May the Swami's memory long inspire us!

श्रद्धाञ्जलिः



माँझी रोक यही पर तरणी, तू भी करले कुछ विश्राम.
जब तक मैं देखूँ विभोर बन, फिर अतीत के स्वप्न ललाम.
गाऊँ मतवाला होकर मैं, फिर से कुल गायन अभिराम
शीश चढ़ाऊँ पद रज लेकर, कर कुलपति को कोटि प्रणाम.—
अयि खण्डहर! शुचि बोधिसत्त्व से, कुलपति के पूजा के स्थान.
जहाँ बैठकर विश्व प्रेम का, उसने साधा मन्त्र महान
जिसके मधुमय अमर गीत से, अबतक गुञ्जित है पवमान.
वही आज पहुँचाता घर घर, प्रेम ज्योति रवि-रश्मि समान.—
श्रद्धातरु! द्युति हीन शोक में, अरे खड़े क्यों मूर्छित प्राण.
राशि राशि पुष्पों के भूषण, गिरा अवनि पर हो म्रियमाण.
क्रन्दन करते हो रह रह कर, पवन सुनाता यह दुख-गान.
"प्रेम दीप वह बुझा दिया है, अरे! किसी ने बन अनजान." —
हे कुटीर! तुम मूक खड़े हो, उसी समय से चिन्ता मग्न
प्रेम दीप वह अरे! जिसी क्षण, चिर अनन्त में हुआ निमग्न
मैंने तो मुखरित ही देखा, तुमको गायन में संलग्न.
आया है निष्ठुर यह करने, तेरे मौन भाव को भग्न.—
श्रद्धा-सदन तुम्हारे सन्मुख, गाये थे हमने कुल गीत.
फेरा था अति प्रेम-मग्न हो, यहीं पिता ने हाथ पुनीत.
किये खेलते इस प्रांगण में, हमने कितने वर्ष व्यतीत.
धूलिधूसरित नष्टभ्रष्ट है, हा! वह तेरी भूति अतीत.—
यहीं झुका कर शीश चरण में, लेते हम जिसकी पद धूल.
प्रेम पूर्ण शब्दों में गद्गद, जिसने कहा श्रेय, अनुकूल.
जिसकी प्रेममयी छाया में, हमने करीं अनेकों भूल.
आज चढ़ाने हम आए हैं, उसकी स्मृति में श्रद्धा-फूल.—

कुलपिता

वत्सलता की सौम्यमूर्ति वह
सदा सामु सम्मुख साकार —
खडी, करेगी कुलपुत्रो के
जीवन मे साहस सचार।
पिता तुम्हारी करुण आँख से-
ढुलका दुख का आँसू एक,
कर जावेगा नन्दी माँ का
दिव्य अलौकिक शुभ-अभिषेक।

श्री वेदव्रत 'द्वितीय'

देहली की वीथियों ने
सीसगञ्ज की छतों ने
देखी दिव्य दर्शकों ने
शान श्रद्धानन्द की।
झांकी घोर घातकों ने
ताकी शोख सैनिकों ने
आंकी वीर मानवों ने
आन श्रद्धानन्द की।
बसी चढी के वनों में,
गूंजती रही गजों में
बैठती सदा दिलों में
तान श्रद्धानन्द की।
दीन दुखियों का त्राण
दलित दलों का प्राण
वीर वैदिकों की बान
जान श्रद्धानन्द की। —
व्योम सा विशाल भाल,
छाती ज्यों फौलादी ढाल,
और मिलना मुहाल –
वीर श्रद्धानन्द था।
वेद की अटूट टेर
काम सोहनी सुमेर
रहा विधि आप हेर
हेर हेर मूक था।

मनुज हुआ महान
गुणी गरिमानिधान
नर देवता समान
सोही स्वर्ग सी धरा।
दानवो से जूझ रहा,
देव पद पूज रहा,
जिज्ञासु को सूझ रहा
पथ पुण्यकर्म का॥ —
बसा कहाँ ? कागडी मे
एक फूंस की कुटी मे
बालको की चुलबुली मे
ग्राम भक्तानन्द का।
सजग सजीव स्तूप
अमिट हुआ अनूप
थी अमरता सरूप
काम भक्तानन्द का।
शिष्यो की मनोगुहा में
भक्तो की भरी सभा में
गुरुगणो की गिरा मे
धाम भक्तानन्द का।
ओठो मे चढा हुआ है
दिलों मे बसा हुआ है
सीनो मे सना हुआ है
नाम भक्तानन्द का॥ — २

(१)

श्रीश्रद्धानन्द-ऋषी का दल, यह शुभ संदेश सुनाता है।
जो जांतपात के दलदल से—निकले वह आर्य कहाता है।

(२)

ऋषिदयानन्द का शुभजीवन, निर्भयता बल से परिपूरण।
क्यों उसका अनुयायी होकर-भय निर्बलता दिखलाता है॥

(३)

उठ जागो निर्बलता छोड़ो, भय मक्कारी से मुख मोडो।
निर्मल, निर्भय, सज्जन केवल—वैदिकधर्मी कहलाता है।

(४)

नित वेदों का स्वाध्याय करो, श्रद्धा से सन्ध्या हवन करो।
जग में दृढ वैदिकवीर कभी— नहिं विघ्नों से घबराता है।

(५)

जीवन मे निर्भयता भरकर, देशी वस्त्रों को धारण कर।
ईश्वर का विश्वासी बनकर— जो कर्म करे सुख पाता है।

बतादो भगवन्! तुम्हीं हमें अब,
कि कैसे स्वागत करें तुम्हारा।
ये शब्द लावें कहाँ से चुन चुन,
कि जिससे स्वागत करें तुम्हारा।

हृदय है गद्गद प्रसन्नता से,
वचन न आते हैं शीघ्रता से।
ये दीन जिह्वा न जानती है
कि कैसे स्वागत करें तुम्हारा।

हे कुलपिता! यह है घर तुम्हारा,
बसे हृदय में सदा यहीं हो।
अबोध बालक न जानते हम,
कि कैसे स्वागत करें तुम्हारा।

हृदय कुसुम की है गूँथी माला,
जो दे चुके भक्ति-भाव-भीनी।
ये हार कृत्रिम न चाहते हो,
तो कैसे स्वागत करें तुम्हारा।

थे शुभ दिवस जब दिये थे दर्शन,
[illegible] आशा हुई वह पूरी।
हैं चाहते पर न जानते हम,
कि कैसे स्वागत करें तुम्हारा।

तुम्हारे बिन हे बसन्त! सूनी
न सोहती थी ये फुलवारी।
है आज कहती ये लहलहाकर
कि कैसे स्वागत करें तुम्हारा?

हे हंस! मानस मलिन पड़ा है,
ये कुञ्ज था कान्तिहीन, कोकिल!
प्रसन्न अब ये हुए बताओ,
कि कैसे स्वागत करें तुम्हारा।

अनन्त स्वर्गीय गीति से मिल—
के प्रेम-वीणा झनक उठी है।
हुए हैं इक तान तार सारे
कि आओ स्वागत करें तुम्हारा।

सूनी वियोग से तेरे, है वाटिका शहीद!

सूखे सुमन से है भरी, ये वाटिका शहीद॥ १ ॥

माता हमारी था वही और वह पिता भी था।

नाता तुड़ाके आज कहाँ, चल दिया शहीद॥ २ ॥

इस वाटिका का एक जो जीवन-प्रकाश था

वोही बुझा के जोत कहाँ, चल दिया शहीद॥ ३ ॥

ये है चमन वही तेरा, पंछी भी हैं वही।

गमगीन इनको ग़म ने तेरें कर दिया शहीद॥ ४ ॥

जो छत्र छाया सिर पै हमारे तुम्हारी थी।

तू सच बतादे लेके कहाँ, चलदिया शहीद॥ ५ ॥

"विद्या" की है ये कामना और याचना यही।

सब गावे तराने कि वो फिर मिलगया शहीद॥ ६ ॥

दिलो के राजा दिलो के स्वामी !
फले व फूले तुम्हारी आशा ॥

इक आँख आँसू ढुलक रहे है
इक आँख जय २ पुकारती है।
इधर धड़कती है धीमी छाती,
उधर उभरती छबीली आशा।

इधर चरण मे यह जाति आती
उधर ये खेती है लहलहाती।
ये मिल तुम्हारे ही गीत गाती
फले न फूले तुम्हारी आशा।

चले हो हँस के दिखाने जौहर,
ये केसरी अब पहन के बाना।
हला चले हो, जिन्हे यहाँ पर —
भला लगावे वे किस पै आशा?।

न कल्पना भी जहाँ थी जाती,
वहाँ तो आसन जमा चुके हो।
वह कौनसी अब नयी जगह है
जहाँ लगाई है आज आशा।

रँगा था बाना वह खूँ से तुमने,
जो पी के विष का करालप्याला।
वह आज छाती पै ठीक उतरा
फली वा फूली तुम्हारी आशा।

खुशी का दिन क्यो न हम मनावे,
मुकुट तुम्हारे जो सिर से उतरा।
उतर वो पैरो पै सिर से आया,
नई बनी है हमारी आशा।

दिलो के राजा ! दिलो के स्वामी !
फले व फूले तुम्हारी आशा ॥

दयारे हिन्द के अहरार है सपूत तेरे
महब्बतो के अलमदार है सपूत तेरे
चरागे महफिले ईसार है सपूत तेरे
मिसाले शम्स जियाबार है सपूत तेरे।
भरी है गोद तेरी देश की दुआओं ने।
सपूत पुत्र दिए तुझको देवताओं ने॥

जियाए इल्म के चश्मे बहाए है तूने
अलूमे-कुदस के गौहर लुटाए है तूने
चराग मादे दिल मे जलाए है तूने
महब्बतो के बहुत गीत गाये है तूने।
तुझी से दिल मे कुछ उम्मीद का उजाला है।
कि तूने गोद मे इनसानियत को पाला है।

मगर तेरी तपिशे-दिल है नातमाम अभी
हुआ नही है मुकम्मिल तेरा निज़ाम अभी।
भरा नही मये-इश्के-खुदा से जाम अभी
सुना नहीं तेरे दिल ने मेरा पयाम अभी।
इस इख्तिलाफे-मजाहिब को तोडकर रखदे।
वतन के टूटे हुए दिल को जोडकर रखदे॥

---

१ स्वाधीनता के पुजारी २ झण्डा ऊँचा करने वाले ३ त्याग व बलिदान ४ सूर्य ५ चमकने वाले सितारे ६ ज्ञान प्रकाश ७ पवित्र भावनाएँ ८ मोती ९ [illegible] १० आयोजना समूह (Organisation) ११ धार्मिक विभिन्नता

दिल मे होता है बडा अफसोस मरने के लिये।
पर ये मरना असल मे है फिर से जीने के लिये।
जागते थे जो अभी वो एकदम मे सोगये।
पर ये सोये है सुबह होते ही उठने के लिये।
यह हवा कैसी चली कि पत्ता पत्ता गिरगया।
पर ये जाते है नये होकर के आने के लिये।
एक लहमे मे हमारा खेल सारा मिट गया।
पर ये परदा ही गिरा है फिर से उठने के लिए।
घर को सूना छोडकर हा! ये किधर को चल दिये।
क्या अजब जाते उधर हो तरक्की पाने के लिये॥
जिससे सारा घर था रौशन, वोही दीपक बुझ गया।
पर बुझा कुछ वक्त को है फिर से जलने के लिये।

हा! खिजाँ ने आके सारा बाग वीराँ कर दिया।
पर ये तो आई इसे फिर से बसाने के लिये।
माँ रुलाती है न सुत को कष्ट देने के लिये।
वो छुडाती दूध इसको अन्न देने के लिये।

तुम छोड कहाँ चलदिये ओ बागबाँ शहीद ।
वीरान चमन कर गये ओ बागबा शहीद ॥ —
फूलो मे रूप रग औ खुशबू जो थी तेरे
तुम साथ ही ले चलदिये ओ बागबाँ शहीद ॥ —
जीवन चिराग बुलबुलो का क्यो बुझा गये
तुम बे रहम क्यो बनगये, ओ बागबाँ शहीद ॥ —
क्यो मातृभूमि बिलबिलाती आज इस तरह
सूनी न करते गोद जो ओ बागबाँ शहीद ।—
यो सूखता चमन न कभी बागे हिन्द का
रहता जो तुझसा पासबाँ, ओ बागबा शहीद । —
क्यो फूटता नसीबा जो करती न गोलियाँ
छलनी बदन तुम्हारा मे, बागबाँ शहीद । —
मुर्झा रही हैं क्यारियाँ, हा आर्य-जाति की,
तू बन के मेहरबान आ, ओ बागबाँ, शहीद । —
बिगडी बनाने आओ जो 'प्रेमी' हो कौम के,
सिर से कफन उतार दो, ओ बागबाँ शहीद ॥ — ८

गुरुकुल का मूल स्रोत

आचार्य

"श्री आचार्य देवशर्मा जी

यद्यपि भारत के एक महापुरुष श्रद्धानन्द को मैं उदारता की मूर्ति के रूप में पूजता हूं तो भी गुरुकुल के मूल में विद्यमान जो श्रद्धानन्द (महात्मा मुन्शीराम) की उदारता का रूप है। उसे मैं जिस ठीक नाम से पुकार सकता-हूं वह उन की (महात्मा मुंशीराम की) आदर्शिता - (Idealism) है। गुरुकुल धारा जो आज ३०, ३५ वर्ष तक बह रही है उसका मूलस्रोत इस महापुरुष का - आदर्शवत्तापूर्ण हृदय था। आदर्शिता हिसाब किताब को नहीं देखती, व्यवहार कुशल लोगों की हंसने की परवाह नहीं करती किसी भी बलिदान को अधिक न समझती हुई आगे आगे बढ़ती जाती है। यह हमारा कुल इसी आदर्शिता की उपज है। इसी लिए गुरुकुलजगत् इतनी विपरीत प्रतिकूल अवस्थाओं में रहता हुआ भी-

अबतक फलफूल रहा है। आदर्शवता व आदर्शवाद शब्द हम ने अंग्रेज़ों की भाषा के Idealism शब्द के अनुकरण में बना लिया है। स्वतंत्र रूप में मैं कहूं तो यह आदर्शवता कहने वाली वस्तु और कुछ नहीं है, यह उठना चाहते हुए आत्मप्रकाश करना चाहते हुए आत्मा का वेग है, तीव्रगति है। दुनियावी शक्तियों के मुकाबिले में प्रबल आत्मप्रदर्शन है। एवं इस कुल के रूप में मुंशीराम की महान आत्मा का आत्मप्रदर्शन हुआ है। इस कुल का प्राण चीज़ उसकी आदर्शवता है। यदि हम कुलपुत्रों ने कुलपिता से इस आदर्शवता को नहीं ग्रहण किया तो हमारा इस कुल में जन्म निरर्थक गया। यदि 'गुरुकुल' के गुरुओं में यह आदर्शवता नित्य नवोल्लास के साथ नहीं संचारित हो रही तो हम इस कुल के संचालक गुरु नहीं कहे जा सकते। अतः जरूरत है कि इस कुल के सब के सब छोटे बड़े कुलवासी उस आदर्शवता से भरपूर रहें, सदा इस दैवी नशे में चूर रहें। एकमात्र अपने उस आदर्श पर टकटकी -

लगाये मस्त चाल से बढ़ते चलें। नहीं तो, केवल श्रद्धानन्द की आदर्शवत्ता के आधार पर हम कब तक जीवित रह सकेंगे, मूलस्रोत के दूर होजाने पर यह गुरुकुल प्रवाह क्यों न बन्द होजायगा - सूख जायगा ?

श्रद्धाञ्जलि

प्रो. लालचन्दजी M.A.

श्रद्धानन्द में मुझे सबसे बढ़ कर कोई विशेषता मालूम होती है तो वह उसका आत्मतेज। शरीर को देखिये, कितना लम्बा-चौड़ा, सुगठित व सुडौल था। जब दण्ड हाथ में लेकर चलते थे तो कितना रोब टपकता था? आजकल के मरियल भारतवासियों की तरह गर्दन आगे को झुका कर नहीं चलते थे। सीधा शरीर रहता था। मालूम होता था, कोई राजदूत चला आ रहा है। शरीर उनको माता पिता से अच्छा मिला हुआ था। मगर नित्य अति नियमपूर्वक आखीर आयु तक व्यायाम करके उन्होंने अपना दम कायम रक्खा था और अपनी हस्ती बनाये रक्खी थी। जहाँ वे व्यायाम को एक धार्मिक कर्तव्य समझ कर करते थे, वहाँ भोजन भी उनका बहुत सीमित और बहुत सात्त्विक होता था। सीमित तथा सात्त्विक भोजन के बिना वीर्यरक्षा असम्भव है। वीर्यरक्षा के बिना बलवान्, तेजस्वी और ओजस्वी होना भी असम्भव है। व्यायाम करना और सात्त्विक व सीमित भोजन करना उनके व्यक्तित्व के प्रभाव का रहस्य तो थे ही, पर एक और

बात थी, जो इनसे पीछे थी, जो इन दोनों को सरल कर देती है, और जो इन दोनों की प्रेरक थी - वह थी, गुरु दयानन्द और उनके स्वप्न की पूर्ति के लिये जीवन का समर्पण। धन्य है वह, जिसका जीवन किसी उच्च उद्देश्य के लिये समर्पित है। ऐसे कर्मयोगी का मार्ग अपने आप खुला चला जाता है। वह यम नियम को बड़े शौक से पालन करता है। उसको तप में मज़ा आता है। जो बातें उसके मार्ग में सहायक हों, चाहे वे कितनी ही कठिन हों, उनका वह हृदय से स्वागत करता है। जो बाधक हों, वे कितनी भी प्रिय क्यों न हों, उनको वह दृढ़ता से रद कर देता है।

शरीर का तो संक्षिप्त वर्णन हो गया। अब ज़रा इस वीर के हृदय की ओर ध्यान दीजिये। कैसा निर्भीक, कैसा विशाल, कैसा करुणामय दिल था इस दिलावर का। जो प्रभु का प्यारा हो उसे किससे डर? वह तो डरने वालों को ढारस बंधाने वाला था। वह तो क्षत्रिय था, दीनों की रक्षा करने, दलितों को उभारने, दुखियों के दुख हटाने, रुदन करने वालों के आँसू पोंछने वाला था। मार्शल लॉ के दिनों जब नौकरशाही के घोर अत्याचार का दौरदौरा था, वही घर घर जाकर मज़लूमों की मदद करने और उनको दिलासा देने वाला था। वह सीधा चलने वाला यदि मज़लूम था तो ज़ालिम

को सलाम करने के लिये नहीं, परन्तु मज़लूम को ज़मीन से उठा कर छाती से लगाने के लिये।

गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की शेरों से और डाकुओं से वह किस हौसले, आत्म विश्वास और निर्भयता के साथ रक्षा करता था यह सबको विदित ही है।

स्वामिन्! तेरे गुण बहुत हैं। सबको गिनने की बजाए यदि हम, जिन्हें गिन चुके हैं उन्हें अपने अन्दर धारण करें तो तुम्हें ज़्यादा खुश कर सकते हैं। इसलिये प्रभु से यही प्रार्थना है कि हममें आत्म तेज हो, हमारे शरीर में बल हो, पराक्रम हो, वीर्य हो, हम ब्रह्मचारी बनें। व्यायाम किये बिना भोजन न करने का व्रत लें, भोजन सादा और सीमित करें, हमारा [illegible] जीवन किसी उच्च उद्देश्य के लिये समर्पित हो, जिससे कि हमारे लिये सब धर्मों का पालन करना सुगम होजाय। हम प्रभु-भक्त हों, निर्भीक हों, आत्म-सम्मान से जीने वाले हों, विशाल दिल वाले हों, देश और धर्म की सेवा के लिये सदा तत्पर हों और अपने प्यारे अद्वेय कुलपति के पदचिह्नों पर चल कर उनका आत्मा प्रसन्न करें।

[signature]

आचार्य श्रद्धानन्द

पं. विश्वनाथजी

स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द के स्मारकों में उन का सब से बड़ा स्मारक गुरुकुल शिक्षा पद्धति है। गुरुकुल शिक्षा पद्धति के पुनरुज्जीवन के यश का भागी एक मात्र स्वामी श्रद्धानन्द है। स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने क्रियात्मक जीवन में सदाचार की महिमा को अच्छे प्रकार समझा था। संसार की बाह्य परिस्थितियां सदाचार, ब्रह्मचर्य तथा आत्मिकोन्नति के लिये कितनी विघातक हैं - इस का मर्म स्वामी श्रद्धानन्द से छिपा हुआ न था। गुरुकुल शिक्षा पद्धति का पुनरुद्धार स्वामी श्रद्धानन्द की कटु अनुभूतियों का भी एक स्वाभाविक परिणाम था। स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल स्थापित किया। अपने जीवन का उत्तम तथा मध्यम भाग उन्होंने इस गुरुकुल की स्थापना, और इस की उन्नति करने में लगाया। स्वामी श्रद्धानन्द जब कभी भी, परिस्थितियों से लाचार होकर गुरुकुल छोड़ जाने में बाधित होते थे तो गुरुकुल से पृथक् रहते हुए भी उन की आशाओं का एक मात्र केन्द्र गुरुकुल बना रहता था। गुरुकुल से अन्तिम छुट्टी पाने पर भी स्वामी श्रद्धानन्द के हृदय से गुरुकुल की वासना कभी दूर नहीं हुई। अपने गुरुकुल के जीवन में स्वामी श्रद्धानन्द या महात्मा मुंशीराम ने अपना आचार्य पद कैसा निभाया इस का थोड़े शब्दों में यहां दिग्दर्शन किया जायगा।

आचार्य श्रद्धानन्द गुरुकुलोद्यान का एक परिश्रमी माली था। अपने ब्रह्मचारियों को गुरुकुल में भेजने के लिये ब्रह्मचारियों के माता-पिताओं को वह अपनी अपूर्व शक्ति से प्रेरित किया करता था। भर्ती के लिये जब बालक अपने संरक्षकों समेत गुरुकुल आते थे तो उन के चुनाव की कमेटी में आचार्य श्रद्धानन्द स्वयं बैठ कर बड़े परिश्रम से ब्रह्मचारियों को चुना करता था। और अपने चुने हुए प्रत्येक ब्रह्मचारी पर न जाने आचार्य की कितनी आशायें बनी रहती थीं। आचार्य श्रद्धानन्द को यह गुरुकुलोद्यान बड़ा ही प्रिय था। उस का कभी जी न चाहता था कि वह इस गुरुकुल से पृथक् होने के लिये बाहिर रहे।

कार्यवश बाहिर जाना भी हुआ तो वह शीघ्र ही अपने प्रिय गुरुकुल में लौटने का यत्न किया करता था। वर्ष में एक दिन भी वह गुरुकुल से बाहिर रहना न चाहता था। गुरुकुल से बाहिर वह जितने दिन भी रहता था उन दिनों में भी हर रोज़ वह पत्रों द्वारा गुरुकुल में परामर्श भेजा करता था। और गुरुकुल से खबरें मंगवाता रहता था ताकि गुरुकुल के दैनिक-समाचारों का उसे सदा ज्ञान रहे। आचार्य श्रद्धानन्द बिमार होता तो इस के लिये "सैनिटोरियम" सदा गुरुकुल ही बना रहता। आचार्य श्रद्धानन्द को गुरुकुल की धुन थी, सच्ची लगन थी। वह गुरुकुल को आर्यसमाज की तथा संसार भर की आवश्यकताओं में एक महान् आवश्यकता समझा करता था। इसी लिये उसने अपने जीवन का अमूल्य समय इस के अर्पित कर दिया। उस की बहुत चाह थी कि वह इस गुरुकुलोद्यान के एक २ पौधे का स्वयं निरीक्षण करे, इस के बढ़ने तथा फूलने-फलने में उस का कृपामय हाथ सदैव बना रहा।

आचार्य श्रद्धानन्द ब्रह्मचारियों को अपने सामने व्यायाम कराता था और उन्हीं ब्रह्मचारियों में रह कर स्वयं भी व्यायाम करता रहा। ब्रह्मचारियों के प्रातराश, मध्याह्नभोजन तथा रात्रिभोजन में वह प्रायः उपस्थित रहा करता था। और स्वयं निरीक्षण किया करता था कि भोजन कैसा बना है और कौन २ ब्रह्मचारी रुचि से भोजन करते हैं और कौन २ नहीं। बहुत समय तक तो आचार्य श्रद्धानन्द लगातार ब्रह्मचारियों में ही बैठ कर स्वयं भोजन करता रहा और इस में वह बहुत आनन्द अनुभव करता था।

आचार्य श्रद्धानन्द स्वयं गुरुकुल के दो मास के अवकाश में ब्रह्मचारियों समेत भिन्न २ स्थानों पर यात्रा में जाया करता था। वह ब्रह्मचारियों की इन यात्राओं को ज्ञान की दृष्टि से बहुत उपयोगी मानता था। इसी लिये आचार्य श्रद्धानन्द ने इन यात्राओं का नाम "सरस्वती-यात्रा" रखा था। वह इन यात्राओं पर ब्रह्मचारियों से विवरण लिखवाता था और उत्तम लेखक को पारितोषिक दिया करता था। आचार्य श्रद्धानन्द को ये सरस्वती-यात्राएं इतनी प्रिय थीं कि किसी भी स्थान पर ब्रह्मचारियों को अपने साथ यात्रा में ले जाने से पूर्व वह स्वयं उस २ स्थान के वृत्तान्तों को पढ़ा करता था और यात्रा के समय ब्रह्मचारियों को उन २ स्थानों के महत्त्व समझाया करता था। वह असामर्थ्य की अवस्था में ही इन यात्राओं का अध्यक्ष किसी अन्य को नियत किया करता था।
आचार्य श्रद्धानन्द रात-दिन इस उद्यान के सुकुमार पौधों की रक्षा के लिये गुरुकुल में सदा चक्कर लगाता रहा करता था। चलती-फिरती उस की भव्य मूर्ति तथा उस के

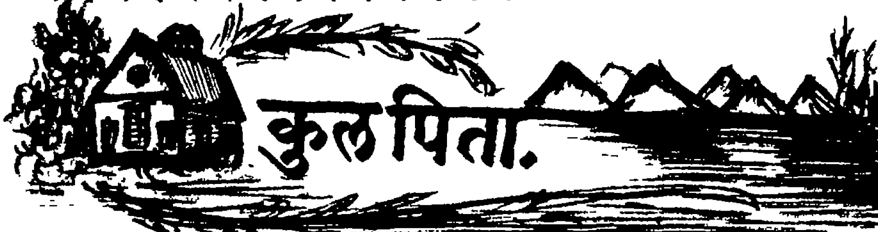
भीतर बहता हुआ प्रेम का अगाध स्रोत ब्रह्मचारियों को अपनी ओर आकृष्ट करने में जादू का सा काम किया करता था। आचार्य श्रद्धानन्द ब्रह्मचारियों के सो जाने के पश्चात् सोया करता और ब्रह्मचारियों के प्रातः काल उठने से पूर्व ही जाग जाया करता था। वह ब्रह्मचारियों और गुरुकुल की रक्षा के निमित्त हर रात एक या दो बार निद्रा-देवी की गुदगुदी गोद का परित्याग कर सोते हुए ब्रह्मचारियों का तथा शेष गुरुकुल का निरीक्षण किया करता था। सर्दियों-गर्मियों में आचार्य की यह प्रथा सदा दृष्टिगोचर होती थी। रात के समय ब्रह्मचारियों पर कपड़ा ओढ़ाना और उन की नैतिक-दृष्टि से भी रक्षा करना उस आचार्य-पिता का विशेष काम था।

आचार्य श्रद्धानन्द को ब्रह्मचारी इतने प्रिय थे कि वह अपराध पर भी किसी को गुरुकुल से पृथक् करना ही न चाहता था। वह सदा यथा-तथा उन्हें समझाने की कोशिश करता। यदि बाधित होकर किसी को पृथक् भी करना पड़ता तो आचार्य श्रद्धानन्द समझा करता कि उस के देह का एक प्रिय अंग अलग हो रहा है। इस प्रिय अंग को पृथक् कर वह दिल ही दिल में रोया करता। ऐसे ब्रह्मचारी को पृथक् कर फिर भी आचार्य की ममता-बुद्धि उस ब्रह्मचारी से पृथक् न होती थी। समय २ पर पत्र व्यवहार से या कभी उस के नगर में अचानक जा उपस्थित होने पर उस पर अपनी वैयक्तिक कृपा के प्रदर्शन से वह कभी न चूकता था।

यह तो आचार्य श्रद्धानन्द के आचार्यत्व का प्रदर्शन हुआ उस समय का, जब कि वह आचार्य रूप में गुरुकुल में वास करता था। गुरुकुल के आन्तरिक जीवन से पृथक् होने की अवस्था में भी श्रद्धानन्द को अपना पुराना आचार्यपन कभी भूला न करता था। अति को संक्षिप्त जिस २ ब्रह्मचारी के साथ आचार्य श्रद्धानन्द ने अपने आचार्यपन में "हृदयों को एक बनाने की" प्रतिज्ञा की थी, उस प्रतिज्ञा को आचार्य श्रद्धानन्द ने अपने जीवन भर में कभी न भूला था। ब्रह्मचारी अपने आचार्य के प्रति कर्तव्यता के पथ से भ्रष्ट हुए तो हुए परन्तु यह सच्चा आचार्य अपने आचार्यपन के पथ से कभी भ्रष्ट नहीं हुआ। इसे अपने ब्रह्मचारियों के रोगों के सुनने में सदा उदासीनता रहती। ब्रह्मचारियों को रोगी कहलाने वाला व्यक्ति इस आचार्य की दृष्टि में अच्छा न जंचता था। यह ब्रह्मचारियों का पक्ष ऐसे करता था जैसे कि कोई अपने प्रिय तथा सगे सम्बन्धी का करे।

ब्रह्मचारी कैसा भी हो उस की मदद और सहायता के लिये वह आचार्य सदा उद्यत रहता था।

हे सच्चे आचार्य! तेरा आचार्यत्व धन्य हुआ, सुफल हुआ। सच्चे आचार्य! मेरी छोटी श्रद्धाञ्जलि को अपनी स्वर्गीय दिव्य मूर्ति में तू स्वीकार कर।



कुलपिता

डा राधाकृष्ण जी. M B B S

प्रथम दर्शन : —

कोई २१ वर्ष की बात है। अभी एफ़- एस सी. में पढ़ता था कि पता चला कि आर्यसमाज (लाहौर) के उत्सव पर गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता महात्मा मुन्शीराम जी का व्याख्यान होगा। जिस दिन रात्री के ८ बजे लैक्चर था, ठीक ५ बजे ही पंडाल में मित्रों सहित पहुँचे, परन्तु स्थान आधे से अधिक घिर चुका था। ३ घंटे पहिले आने पर भी दूर ही बैठना पड़ा। उतना समय कैसे बीतता। इधर उधर पूछना आरम्भ किया कि महात्मा जी कैसे हैं? बन्द गले का कोट पहिने, सिर पर बड़ी सी पगड़ी बान्धे, एक कट्टर समाजी बोल उठा 'पता लगता है, अभी तक महात्मा जी के कभी दर्शन नहीं किये। क्या आर्यसमाजी हो?'

चोट तो सरल थी और फिर विद्यार्थी की। परन्तु पढ़ते थे गवर्नमेन्ट कॉलिज में, इस लिये छकाने के लिये कहा — 'जी। अब समाज में प्रविष्ट होने का विचार है। पिता जी के मना करने पर भी महात्मा जी का व्याख्यान सुनने आया हूं।' सुनते ही कट्टर समाजी मौन हो गये और प्रेम से महात्मा जी का परिचय देना आरम्भ कर दिया — 'बड़े सुडौल, लम्बे चौड़े जवान, लम्बी बुज़ुर्गाना दाढ़ी, ऊंचा माथा, चौड़ी छाती, चेहरे पर सदा प्रसन्नता और रोब। देखते ही मस्तक झुक जाता है।'

किसी प्रकार ३ घंटे बीते और भजन आरम्भ हुए। भजन आधा ही हुआ था कि दरवाज़े पर शोर मचा -' महात्मा जी आ गये।' फिर क्या था सब लोग दर्शनों के लिये खड़े हो गये और जय जय के नारे लगे। उधर से मंच पर से आज्ञायें मिलने लगीं- 'बैठो। बैठो।' इस उठने बैठने में हम मंच के पास जा पहुंचे।

महात्मा जी के खड़े होते ही सन्नाटा छा गया। सुई गिरती भी सुनाई दे सकती थी। दर्शन खुले हुए और सचमुच ही सिर झुक गया।

प्रतीत होता था मानो हिमालय की कन्दरा में से कोई तेजस्वी तपस्या कर के लौटा है।

व्याख्यान आरम्भ हुआ। पटियाला में समाज-मन्दिर का झंडा सरकार ने उतरवा दिया था। बात मामूली सी थी परन्तु वर्णन कैसा रोमांचक! श्रोता धाड़ें मार मार कर रो रहे थे। समाज के लिये सब के दिल में जोश भर गया। वक्तृता की अपूर्व शक्ति का उसी दिन परिचय मिला।

चरणों में :—

पूरे दस वर्ष तक, महात्मा की मंच पर खड़ी शक्ल को दिल में कई बार देखा। उस के गुरुकुल की स्तुति सुनी। महात्मा और उस के गुरुकुल के दर्शनों की इच्छा प्रबल हो उठी। मित्रों से गुरुकुल उत्सव पर चलने की रार ठहरी। इसी बीच में गुरुकुल से लौटे एक सरदार ने कहा-'गुरुकुल के चिकित्सक डा· सुखदेव जी चले गये। उन का स्थान खाली है। तुम चले जाओ।' सुनते ही पत्र भेजा। उत्तर मिला, 'चले आओ'। सोचा, नौकरी करने के लिये अपरिचित स्थान पर चलने से पूर्व छानबीन करनी उचित है। एक मित्र ने कहा-'अरे! गुरुकुल से आचार्य रामदेव रुष्ट होकर आये हैं। उन से गुरुकुल के सब दोष पता चल जावेंगे। उन से मिलने के पीछे विचार बनाना।' बात ठीक जंची। उस उम्र में इतना न सोचा कि एक अपरिचित नवयुवक को रामदेव जी पहिली बार ही मिलने पर सब कुछ कैसे बता देंगे? फिर भी चतुर गुप्तचरों की न्याई आचार्य जी के पास पहुंचे। सुनते ही कि मुझे गुरुकुल से बुलावा आया है, आचार्य जी बोले—'तुम्हारे अहो भाग्य! ऐसे पवित्र स्थान की सेवा पुण्यकर्मों का फल है। शीघ्र जाओ।' विस्मय से पूछा-'जी! आप स्वामीजी से लड़ कर क्यों आये?' उत्तर मिला-'पुत्र क्या पिता से रुष्ट नहीं होता?' यह सुन कर क्या कहा जाता। सोचा गुरुकुल में परस्पर इतना प्रेम! झगड़े के पीछे भी इतना अपनत्व!

दूसरे ही दिन जाने पर विचार किया। किसी ने कहा 'भाई! महाशय कृष्ण से भी मिल लो।'

महाशय कृष्ण आचार्य जी से भी अधिक चतुर। बोले-'धनी के

पुत्र हो, सेवा सदन में आ जाओ।' मैंने पूछा 'जी! इतने लम्बे व्रत करने पर यदि बीच ही में आना पड़ा तो?' उत्तर मिला — 'कोई कैदखाना नहीं। जब चाहे आ जाना।' पास ही कोई बूढ़ा बैठा था, बोला – 'बेटा! इस कृष्ण ने भी समाज की सेवा की, तुम भी कृष्ण हो। इस का पुत्र प्रकाश पत्रिका है, तुम्हारा पुत्र प्रकाश। बस, तुम भी समाज की ही सेवा करो।' पार तो पुल गये। आने का निश्चय पक्का हो गया। तीसरे दिन पं० विश्वम्भरनाथ जी तथा देवराज जी सेठी के साथ गुरुकुल पहुंच गये।

स्वामी जी के गुरुकुल में पहुंचे परन्तु स्वामी जी न थे। पूछने पर पता चला स्वामी जी तो छोड़ गये। बड़ी उदासी आ गयी। सिर मुंडाते ही ओले। कमर टूट गई। अब आ तो गये थे; वापिस क्या जाना।

तीन महीने बाद आचार्य रामदेव जी भी आ गये। पूज्य भाई विश्वनाथ जी, गुरुकुल में मेरे पहिले मित्र, कहा जाते पता नहीं आचार्य जी को क्या कह गये कि उन्होंने सेवा-सदन में लेकर ही छोड़ा। उसी वर्ष उत्सव पर स्वामी जी गुरुकुल पधारे। Hernia के सम्बन्ध में कुछ पूछने के लिये डाक्टर को याद किया। मैं भागा भागा गया। दुबारा दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ और इतने समीप से। चरणों में गिर पड़ा। स्वामी जी ने कहा- 'आप ही सेवा-सदन में आए हैं।' सिर झुका कर मैंने कहा- 'आशीर्वाद दें कि प्रण प्राणों से निभे।' वे बोले- 'मेरा तो रोम रोम आशीर्वाद देता है।' सिर तो चरणों में झुका ही था, हृदय और मन भी झुक गये। पर्दा:~

मुझे सेवा-सदन में प्रवेश करने का काम आचार्य रामदेव जी का था। कारण वे ही जानें। उन दिनों स्वामी जी और आचार्य जी में मन-मुटाव हो रहा था। मुझे इस का पता न था। मुझे तो आचार्य जी के ये शब्द स्मरण थे कि- 'क्या पुत्र कभी पिता से रुष्ट नहीं होता।' परिणाम यह हुआ कि आचार्य जी और स्वामी जी में घनिष्ठता समझ कर स्वामी जी के सामने आचार्य जी की प्रशंसा कर उठी। स्वभावतः स्वामी जी ने यही समझना था कि मैं उन का आदमी नहीं। स्वामी जी की मुझ पर पितावत् कृपा और मेरी भक्ति में परदा आना आरम्भ हो गया। मैंने समझ लिया कि हाथियों की लड़ाई में चीटियें पिसा ही

करती है। जिस नेता के समीप रहो वह बोझ सा प्रतीत होने लगता है और जिस के दूर रहो, वह बेगाना समझता है। सच है बड़े वृक्षों की परछाई मात्र से ही छोटे वृक्ष मुरझा जाते हैं।

एकमात्र सम्बन्ध :—

वैयक्तिक सम्बन्ध तो समाप्त हो गया परन्तु फिर भी स्वामी जी की कृपा बनी रही। ही रही कारण मैं गुरुकुल में काम करता था। यही एकमात्र सम्बन्ध पर्याप्त था। स्वामी जी इसी सम्बन्ध के हेतु गुरुकुल के कार्यकर्ताओं को प्रेम से मिलते। गुरुकुल में भी आते तो गुरुकुल के भूत और भविष्य पर विचार करते। कहीं भी त्रुटि देखते तो उन के हृदय पर वज्र सा गिरता प्रतीत होता। कह देते- 'आया भाई, यह मेरा पौधा अब तुम्हारे हाथों में, जैसे मर्ज़ी रखो।'

गुरुकुल में बाढ़ आई। स्वामी जी इस की दशा देखने को भागे आए। घूम घूम कर देखा। अपने बंगले पर पहुंचते ही रो पड़े। मौन हो गये। अन्त में यही कहा- 'ईश्वर, तेरी इच्छा।'

गुरुकुल को वहां से लाने का प्रयत्न था। स्वामी जी तड़प उठे मानो किसी मार्मिक व्रण पर नमक छिड़क दिया हो। जो ज़रा भी पुरानी भूमि की प्रशंसा करता उस से घुल घुल कर बातें करते और अपना दुःख प्रकट करते। जिस ने ज़रा भी विरुद्ध कहा, उसे पहिले तो समझाते। यदि वह रोब से भी हां न करता तो कह देते—'तुम क्या जानो पीर पराई। क्या मैं अपने जीवन में ही अपने इस पौधे को उखड़ते देखूं ! मुन्शी (मुन्शी अमनसिंह) जी का ऋण क्या भूल गये ?' सचमुच स्वामी जी ने अपने जीवन में गुरुकुल इधर आते नहीं देखा।

मैंने पूछा- 'स्वामी जी ! यदि फिर बाढ़ आए तो गुरुकुल कैसे बचे ?' बोले- 'बन्द बना लो। हिम्मत नहीं क्या ! मैंने तो छोटे छोटे बालकों को साथ लेकर स्वयं पत्थर ढोए और बन्द बनाया। क्या तुम लोग नहीं कर सकते ?'

थोड़ी देर पीछे मैंने कहा - 'महाराज ! यहां मलेरिया अधिक है।' तुरन्त उत्तर मिला- 'उधर भी कम नहीं है। यहां की धरती तो रेतीली है, पानी शीघ्र जज़्ब हो जाता है। उधर गड्ढों में पानी

ठहरा करेगा और मलेरिया अधिक होगा।'

मैंने कहा – 'इधर हम दुनिया से अलग पड़ गए हैं।'

मानो विषैले सांप पर पैर पड़ गया हो। क्रोध में बोले – 'इसी पापमयी दुनिया से बचाने के लिये तो मैं गुरुकुल यहां लाया था। तुम तो इस की जड़मूल ही उखाड़ते हो। भाई। यदि बिजली चाहते हो, अपनी लगा लो। अपने नलके लगा लो। परन्तु परमात्मा के वास्ते गुरुकुल को बस्ती में ले जाकर मेरे ब्रह्मचारियों को आजकल के व्यभिचार तथा फैशन की हवा न लगने दो।' पर गुरुकुल तो इधर आकर ही रहा।

देहली में :–

देहली में कई बार गया। स्वामी जी को अवश्य मिलता। जिस प्रेम से बिठाते, भोजन को पूछते। गुरुकुल के एक एक आदमी का नाम ले कर पूछते; अब भी जब याद आता है तो दिल भर जाता है। सचमुच उन के दिल में गुरुकुल के लिये प्रेम था। प्रतीत यही होता था कि गुरुकुल में यद्यपि नहीं हैं, फिर भी उन का दिल गुरुकुल की एक एक ईंट में, एक एक व्यक्ति में बसता था। नौकर चाकर तक के नाम उन को याद थे। मत-भेद होते हुए भी गुरुकुल से जो प्रेम करता था, वह उन का अपना था। वास्तव में वही थे गुरुकुल के कुल-पिता।

आचार्य की आशा

श्री. प सत्यदेव जी

दिवंगत आचार्य स्वामी श्रद्धानन्द जी की जीवनी लिखने के लिए उन के पुराने कागज़ों और समाचारपत्रों की फाइलों को टटोलते हुए 'श्रद्धा' के २४ वैशाख के (सम्वत् १९७८ के) एक लेख की अन्तिम पंक्तियों पर सहसा दृष्टि पड़ी और उन से पता चला कि आचार्य को हम से – गुरुकुल के स्नातकों से क्या आशा थी? लेख का विषय वही था, जिस पर इस समय में आर्यसमाज में विशेष चर्चा है। जो लोग आर्यसमाज को धर्मसभा बताकर सरकार की नज़रों से उस को बचा ही नहीं लेना चाहते किन्तु उस को सरकार का कृपापात्र भी बना देना चाहते हैं, उन की भूल को आचार्य ने उस लेख में दिखाया था और उस का खण्डन भी किया था। उस लेख का शीर्षक था– "क्या धर्मसभा सिद्ध कर के बच जाओगे?" उस विस्तृत लेख की अन्तिम पंक्तियां ये थीं– "आर्यसमाज ब्रिटिश गवर्नमेंट के लिए एक बड़ी भयानक विरोधिनी शक्ति है। यह ब्रिटिश नौकरशाही का १९०९ में दृढ़ निश्चय था। निश्चय तो अब भी वही है, परन्तु अब उतना नहीं रहा क्योंकि न तो आर्यसमाजियों ने ही अपने सिद्धान्तों को क्रिया में लाने का दृढ़ प्रमाण दिया और न गुरुकुल के स्नातकों, ४ व ५ को छोड़ कर उस कर्तव्य का पालन

किया, जिस की उन से आशा थी। मैं चाहता हूं कि मेरे इस लेख को आर्यसमाज के सभासद् साधारणतया तथा गुरुकुल के स्नातक और ब्रह्मचारी विशेषत: शुद्ध मन से पढ़ें और अपने कर्तव्य को पहचानें।"

उस लेख की नकल फुलस्केप के १४ पृष्ठों में पूरी हुई है इस लिये उस को इस लेख के साथ दे सकना संभव नहीं और उस के कुछ अंशों को यहां उद्धृत करने से भी मतलब पूरा नहीं होता। फिर भी उस लेख का आशय समझना कुछ कठिन नहीं है। 'सत्यार्थप्रकाश' के छठे समुल्लास में राजनीति का इतना विस्तृत विवेचन होने पर, जहां तहां उस ग्रन्थ में भारत के लिए साम्राज्य, चक्रवर्ती राज्य तथा सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य का स्पष्ट उल्लेख करते हुए, 'आर्याभिविनय' सरीखे राष्ट्रीयता-प्रधान प्रार्थना पुस्तक के होते हुए और सवेरे शाम प्रतिदिन सन्ध्या में सौ वर्ष की आयु में जीवनपर्यन्त कभी भी पराधीन न होने की प्रार्थना करते हुए भी आर्यसमाज के राजनीति से सम्बन्ध होने न होने के सम्बन्ध में चर्चा होना ही अत्यन्त लज्जास्पद है और बहुत कुछ घृणास्पद भी है। सचमुच देश का और देश से भी अधिक आर्यसमाज का यह महान् दुर्भाग्य है कि आर्यसमाज सरीखी प्रगतिशील, संगठित, शिक्षित एवं उन्नत संस्था को इस चर्चा ने प्राणहीन शरीर और प्रकाशहीन दीपक के समान निस्तेज, निर्वीर्य और प्रभावशून्य बना दिया है। देश की आज़ादी के गीत गाती हुई जो संस्था मैदान में आई थी, उस के इस प्रकार सन्देहावस्था में पड़ने से अधिक शोचनीय अवस्था और क्या हो सकती है?

आर्यसमाज के इस शोचनीय अवस्था में पड़ने का

कुछ इतिहास है और कुछ कारण भी है। १९०१ से लगभग १९१० तक और बाद में भी सरकारी दमन का एकमात्र लक्ष्य वह आर्यसमाज की बढ़ती हुई शक्ति को दबाना और कुचलना था। वह राजभक्ति का युग था। राजद्रोह के अनंतर लोकमान्य तिलक ने भी १९०६ में सरकारी अदालत में यह ही सिद्ध करने का यत्न किया था कि मैं राजद्रोही नहीं हूं। पञ्जाब केसरी लाला लाजपतराय जी को भी देशनिकाले पर निर्दोष साबित करने का ही आन्दोलन देश में उठा था। उस समय आर्यसमाज ने भी सामूहिक रूप में अपने को राजभक्त बनाने की भरपूर कोशिश की थी। स्वामी श्रद्धानन्द जी-उस समय के महात्मा मुंशीराम जी- अहोरात्र यह सिद्ध करने में लगे रहते थे कि आर्यसमाज राजद्रोही संस्था नहीं है। उन्हों ने इस बात को सिद्ध करने में कोई भी बात उठा नहीं रक्खी थी। पर, आर्यसमाजियों को उन का एक ही आदेश था कि 'निडर हो कर धर्मपथ पर चलो, किसी भी सांसारिक शक्ति के भय से अपने धर्म को मत छोड़ो।' 'यदि तुम से यह कहा जाये कि अपने परमात्मा और उस की पवित्र वाणी वेद से विमुख हो कर ही प्रजा धर्म का पालन हो सकता है तो तुम स्पष्ट उत्तर दो कि जिस आत्मा पर संसार के चक्रवर्ती राजा का भी अधिकार नहीं हो सकता, उस को सांसारिक ऐश्वर्य पर न्यौछावर करने के लिए तुम उद्यत नहीं हो।' ——— जहां वेद और 'इण्डियन पीनल कोड' का विरोध हो, वहां श्रुति को धर्म का मूल मानना तथा जहां परमात्मा की आज्ञा का सांसारिक राजा की आज्ञा से विरोध हो वहां परमात्मा की शरण लेना। यदि अभीष्ट न हो तो फिर आर्यसमाज में रह कर भी क्या लाभ होगा?" सारांश यह है कि आर्य

समाज को राजभक्त अथवा अ-राजद्रोही सिद्ध करने में अहोरात्र लगे रहते थे भी स्वामी जी (उस समय के महात्मा जी) ने आर्यसमाज को सरकार की अथवा सरकारी कर्मचारियों की खुशामद, चापलूसी आदि से सर्वथा अलिप्त रह कर अपने निश्चित मार्ग का ही दृढ़ता के साथ अवलम्बन करने का सदा उपदेश अथवा आदेश दिया था।

देश की परिस्थिति ने कुछ ऐसा पलटा खाया कि राजभक्ति का स्थान राजद्रोह ने ले लिया। परम राजभक्त और सहयोग के प्रश्न पर लोकमान्य तिलक तथा देशबन्धु दास आदि से अमृतसर कांग्रेस पर तीव्र मतभेद रखने वाले महात्मा गान्धी ने ही राजद्रोह, सत्याग्रह और असहयोग का ऐसा तीव्र आन्दोलन देश में खड़ा कर दिया कि देश के राजनैतिक शब्द-कोष में शब्दों तथा परिभाषाओं का अर्थ ही बदल दिया। देश के राजनैतिक दृष्टिकोण में भी वैसा ही परिवर्तन हो गया। स्वामी श्रद्धानन्द उस समय कहां थे? देहली के सत्याग्रह के मैदान में; घण्टाघर के नीचे गुरखों की नंगी संगीनों के सामने छाती तान कर खड़े होना और यह कहना कि मैं खड़ा हूं, गोली चलाओ' — और दूसरी ओर ४०-५० हजार की भीड़ पर अंगुली के इशारे से नियन्त्रण रखना, देहली की शाही जामा मसजिद के मिम्बर पर से भाषण देना और हिन्दुओं से भी अधिक मुसलमानों के हृदयों पर अधिकार करना, फौजी शासन से आरत पञ्जाब की मरहमपट्टी के लिए सब से पहले लाहौर पहुंचना, जलियांवाला बाग के रौरव हत्याकाण्ड के बाद उस अमृतसर शहर में जिस का अंग प्रत्यंग छिदा हुआ था कांग्रेस के असम्भव जंचने वाले अधिवेशन को इतनी सफलता के साथ सम्पन्न कराना, उस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष हो कर राष्ट्रभाषा हिन्दी में ही अपना भाषण [redacted] पढ़ना, उस भाषण में देशवासियों से दलि

तोहार के लिए अपील करना और १९२२ में सिक्खों के गुरु के बाग के लिए जेल जाना – कुछ ऐसी असाधारण घटनायें हैं जिन से स्वामी जी के राजभक्त से राजद्रोही होने का स्पष्ट परिचय मिलता है। वैसे तो सन् १९०१ से ही आप के देशभक्ति पूर्ण जीवन का सूत्रपात हो चुका था, जब कि आप फलती फूलती हुई वकालत को लात मार कर, संसार में ऐश्वर्य-सम्पन्न होने की अवस्था में गले में झोली डाल गुरुकुल सरीखी सोलह आना खरी राष्ट्रीय संस्था की स्थापना का विचार पक्का कर घर से निकल पड़े थे। गुरुकुल विश्वविद्यालय स्वामी जी की राष्ट्रीयता, देशभक्ति, दूरदृष्टि, स्वाभिमान, स्वावलम्बन एवं आदर्शवाद आदि सद्गुणों की जीती जागती निशानी है। कोई कूपमण्डूक इस को माने या न माने किन्तु आर्यसमाज को गुरुकुल की और इसी लिये स्वामी श्रद्धानन्द जी की बदौलत जो प्रतिष्ठा, गौरव एवं ख्याति प्राप्त हुई है, उस का शतांश भी बाकी सब कार्य द्वारा प्राप्त नहीं हुआ है। अस्तु, अभिप्राय इतना ही है कि स्वामी जी राजभक्त होते हुए भी हाकिमपरस्त, चापलूस अथवा खुशामदी नहीं थे और आर्यसमाज को भी भयानक दमन के दिनों में आप ने ही ऐसे घोर पतन से बचाया था। उस के बाद देश की राजनीति के साथ स्वामी श्रद्धानन्द जी तो बदल गये किन्तु आर्यसमाज 'राजद्रोहीन होने की', 'धर्म को राजनीति से अलग रखने की' और 'केवल धर्मोपदेशक बनने की' ही माला फेरता रहा। आर्यसमाज का यह भी एक बड़ा दुर्भाग्य ही था कि आर्यसमाज में हाकिमपरस्तों की संख्या बढ़ती चली गई और ऐसे लोग आर्यसमाज में अधिकार भी प्राप्त करते चले गए। नीतिकुशल सरकारी अधिकारियों ने भी जब यह देखा कि दमन की कड़वी गोली का काम विष की मीठी गोली से निकल

सकता है, तब उन्हों ने भी दण्ड की नीति का प्रयोग छोड़ कर साम तथा दान की नीति को से काम लेना शुरू कर दिया। जो लोग केवल आर्यसमाजी होने से ऊंची तथा ~~जिम्मेवारी से~~ जिम्मेवारी की नौकरियों के अयोग्य समझे जाते थे उन को ऊंची से ऊंची नौकरियां तथा बड़ी से बड़ी जिम्मेवारी के पद दिये जाने लगे। रायसाहब और रायबहादुर आदि के खिताबों की खैरात भी दोनों हाथों से आर्यसमाजियों को बांटी जाने लगी। इन सब का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि व्यक्तियों तथा अधिकारियों के साथ २ आर्यसमाज का भी सामूहिक रूप में कुछ ऐसा नैतिक-पतन शुरू हो गया कि स्वामी श्रद्धानन्द जी सरीखे त्यागी और तपस्वी नेता के प्रत्यक्ष आचरण का, ऋषि दयानन्द के स्पष्ट आदेश तथा उपदेश का और नित्य प्रति सन्ध्याओं में की जाने वाली 'अदीनाः स्याम शरदः शतम्' की प्रार्थना का भी आर्यसमाज के लिए कुछ अर्थ न रहा। प्रतिगामी शक्तियों का आर्यसमाज में जोर हो गया। सरकार के आश्रित रहने वाले नौकरीपेशा लोग आर्यसमाज में अधिक थे। जिन की प्रवृत्ति राजनीति की ओर हुई, उन्होंने ऐसे आर्यसमाजियों के साथ मगज़पच्ची करने की अपेक्षा कांग्रेस तथा कांग्रेस से सम्बन्धित संस्थाओं के साथ मिल कर काम करना अधिक अच्छा समझा। गगनचुम्बी उमंगों और आकांक्षाओं से भरे हुए हृदय वाले युवकों को सन्ध्याहवन के दायरे में बांध रखना असम्भव था। वे सब आर्यसमाज से दूर होते चले गये। आर्यसमाज ने 'सत्यार्थप्रकाश' के छठे समुल्लास को कुछ भुला-सा-ही दिया और युवकों ने आर्यसमाज को भुलाना शुरू कर दिया। युवकों की प्रेरक शक्ति के बिना जब कोई भी संस्था आगे नहीं बढ़ सकती तब आर्यसमाज की गाड़ी की गति भी रुक सी गई। व्यक्तियों के समान संस्थाओं का नैतिक पतन भी उन को प्रभावशून्य

बना देता है। आर्यसमाज की इस समय कुछ ऐसी ही अवस्था है। इस का प्रभाव मिट-सा गया है और सरकार भी इस से उतनी भयभीत नहीं रही जितनी पहले थी। सरकार की साम और दान की नीति पूरा काम कर गई।

आर्यसमाज के नैतिक पतन अथवा धर्म को राजनीति से अलग रखने के लम्बे इतिहास का यह सारांश है। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने उस लेख में इस प्रकार पैदा हुई अवस्था की ओर गुरुकुल के स्नातकों और ब्रह्मचारियों का ध्यान विशेष रूप में आकर्षित करते हुए यह आशा और विश्वास भी प्रगट किया था कि वे इस अवस्था को बदलने का कुछ न कुछ यत्न अवश्य करेंगे। इस में सन्देह नहीं कि सन् १९३० और १९३२ के सत्याग्रह आन्दोलनों में गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों ने अपनी पढ़ाई की और स्नातकों ने अपने कार-बार, घर-गृहस्थी तथा सुखसम्पत्ति की कुछ भी परवाह न कर जो त्याग तथा कष्ट-सहन किया है उस का इतिहास अत्यन्त उज्ज्वल है और उस से गुरुकुल तथा आर्यसमाज का मुख भी निश्चय ही उज्ज्वल हुआ है किन्तु राजनीति के सम्बन्ध में आर्यसमाज की सामूहिक स्थिति आज भी वैसी ही है जैसी कि तब थी, जब स्वामी श्रद्धानन्द जी ने ऊपर का लेख लिखा था। १९३०-३२ के आन्दोलनों में विशेष ब्रह्मचारियों तथा स्नातकों के कार्य से आर्यसमाज की उस अवस्था में इसीलिए कुछ परिवर्तन नहीं हो सका कि वह सब कार्य तथा कष्ट-सहन आर्यसमाज के मार्फत न हो कर कांग्रेस तथा अन्य संस्थाओं के मार्फत हुआ था और वह सामूहिक रूप में न कर के बहुत कुछ व्यक्तिगत रूप में ही किया गया था।

दिवंगत आचार्य की उस आशा अथवा आकांक्षा की ओर ही गुरुकुल के स्नातकों तथा ब्रह्मचारियों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करने के लिए यह लेख लिखा गया है। अजमेर की श्रीमद्-दयानन्द निर्वाण-अर्द्ध-शताब्दी पर यह स्पष्ट हो गया है कि आर्यसमाज के वर्तमान नेता उस को "सार्वभौम" कहते हुए भी कुछ ऐसी आत्म-वञ्चना में उलझ रहे हैं कि एक ओर तो वे उस को साम्प्रदायिकता की दलदल में धकेल रहे हैं और दूसरी ओर उस को हाकिमपरस्ती की गंदगी में धंसा रहे हैं। इस लिए दिवंगत आचार्य की उस आशा को पूरा करने का यह और भी अधिक संगीन अवसर है। फिरकापरस्ती (साम्प्रदायिकता) और हाकिमपरस्ती दोनों से आर्यसमाज को बचाये बिना आचार्य की वह आशा पूरी नहीं की जा सकती। स्वामी श्रद्धानन्द जी के नेतृत्व, त्याग एवं तपस्या को आर्यसमाज के लिए पुनीत मानने वाले आर्य सभासदों और उन को आचार्य मानने वाले गुरुकुल के स्नातकों तथा ब्रह्मचारियों को उन के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए आज के दिन यह सोचना चाहिए कि वे आचार्य की उस आशा को किस प्रकार पूरा कर सकते हैं और कैसे आर्यसमाज को हाकिमपरस्ती से अलिप्त रख कर राजनीति एवं धर्म के बारे में सन्दिग्ध अवस्था से उस को उभार सकते हैं? इस संशयात्मकता से आर्यसमाज को बचाने के लिए अपने कर्त्तव्य-कर्म के निर्णय करने और उस में तन्मय हो कर लग जाने का आज ही दिन है।

श्रद्धाञ्जलि

पं. वंशीधर जी.

स्वामी श्रद्धानन्द भारत के उन महापुरुषों में से थे जो भारत को अपने प्राचीन-युग के सब से उन्नत काल से भी अधिक उन्नत, महान् और गौरवपूर्ण बनाने के महत्वाकांक्षी थे। उन के उदार हृदय का आकाश भारत-वर्ष की उन्नति के गरिमामय स्वप्नों की रङ्गीन छाया से आभासित था, जिन को एक जीवित और जागृत प्रतिमा बना देने के लिये उन्होंने अपने जीवन की समस्त शक्ति को लगा दिया। उन के इस उद्देश्य की पूर्ति के मार्ग में जो विघ्न बाधायें आईं, उन्हें उन्होंने अपने अतुलनीय साहस और प्रतिभा-पूर्ण कार्य-कुशलता से अपनी विजय का स्मारक चिन्ह बना कर छोड़ दिया। उन के घुटने से भी नीचे पहुंचने वाले लम्बे हाथ इस बात के साक्षी थे कि वे किसी ऐसे महान् कार्य को करेंगे जो उन ही के विशाल शरीर के समान अपनी छाती खोल कर और अपना गौरवपूर्ण सिर उठा कर बड़ी शान के साथ किसी प्रगतिशील दिशा की ओर अग्रेसर होगा। जिन्होंने कभी अत्यन्त ध्यान पूर्वक उन के झुर्रियां पड़े वृद्ध मुख की उन दो प्रकाशमान बड़ी आंखों का अध्ययन किया है, जिन में आत्म-विश्वास, निर्भीकता और अटल श्रद्धा के दीपक की निष्कम्प शिखा की किरणें प्रस्फुटित हो रही थीं; वे इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि उन में नवयुवकों की वह उमड़ती

हुई तरुणता थी, जिस से अविश्वसनीय सुगमता के साथ किसी बुढ़ापे का बुढ़ापा भी पूर्ण जवान हो सकता था।

और मृत्यु तो स्वयं उन का एक नया जीवन था। उन की इस तरह जीवन-मयी मृत्यु हुई- इस में तो कोई आश्चर्य की बात ही नहीं है। आश्चर्य तो तब होता, जब कि उन की मृत्यु इस तरह जीवनपूर्ण न हो कर मृत्युमयी होती। जीवन का अन्त जीवन ही हो सकता है; मृत्यु नहीं। जिन लोगों का जीवन केवल सांस लेती हुई मृत्यु है, वे भला उस मृत्यु के मूल्य को क्या समझेंगे, जो कि स्वयं एक सांस लेता हुआ प्राण-मय जीवन है। स्वामी श्रद्धानन्द की मृत्यु ने उन के जीवन पर जीवन की मुहर लगा दी। यह वह मरण था, जो कि जीवन का महान् उत्सव होता है।

आज उसी महान् आत्मा के जीवन के उत्सव का पुण्य दिवस है। हम लोग आपस के विचारों के मतभेदों का बड़ा मूल्य करते हैं। जिन लोगों के विचार हम से नहीं मिलते, हम उन्हें इस योग्य ही नहीं समझते कि वे किसी प्रकार हमारी विचार श्रेणी में भी प्रवेश कर सकें। परन्तु इन विचार भेदों से ऊपर एक शक्ति है और वह है उन विचारों को क्रियात्मक रूप में परिणत करने के लिये सब प्रकार के कष्टों को सहन करने की वह सराहनीय अलौकिक वज्र-क्षमता, जो कि असम्भव को सम्भव कर के दिखला सकती है। यह वही क्षमता है, जिसे आग दग्ध नहीं कर सकती, हवा सुखा नहीं सकती और संसार की कोई अदम्य शक्ति भी

देखा नहीं सकती। ऐसी ही क्षमता, ऐसी ही असाधारण शक्ति विचारमयी छायाओं को ऐसी वास्तविकता में परिवर्तन कर देती है, जिस से कि वह संसार की एक प्रतिदिन की अत्यन्त साधारण वस्तु बन जाती है। इसी शक्ति के द्वारा विचार मूर्तरूप धारण करते हैं और जितनी ही यह क्षमता महान् होती है, उतनी ही उन विचारों में प्रबलता और महत्ता उत्पन्न हो जाती है। हम किसी के विचारों की प्रशंसा करें या न करें परन्तु क्या इस वज्र-क्षमता को आदरणीय एवं स्तुत्य समझने में किसी की दो सम्मतियां हो सकती हैं!

स्वामी श्रद्धानन्द में इस प्रकार की असाधारण क्षमता थी। उन्होंने अपने जीवन में ऐसे कार्यों को करके दिखलाया, जिन से लोगों के केवल लोगों का मतभेद ही नहीं था परन्तु जिन्हें लोग सर्वथा असम्भवनीय समझते थे। आज वे कार्य प्रतिदिन की उन वस्तुओं में सम्मिलित हो चुके हैं कि जैसे वे कभी असम्भव थे, यही लोगों को विश्वास नहीं होता। उन्होंने अपनी इस विराट्, अनभिभवनीय और अनन्त ज्वाला-मुखी शक्ति से जिन विचारों में जीवन संचारित कर दिया वे विचार आज उस सीमा तक पहुंच चुके हैं जहां कि कोई अत्यन्त साधारण व्यक्ति भी पहुंच सकता है।

आज इस महान् पुरुष के जीवन-महोत्सव के दिन हम उस की इस महान् शक्ति को अपने नम्र प्रणामों की श्रद्धाञ्जलि भेंट करते हैं।

श्रद्धानन्द - द०३ - सान्मुख्य

मे

१ ---- ०

अमर आत्मा.

प. चन्द्रकान्त जी.

आज से लगभग एक सदी पहिले टंकारे में प्रणव धनुष की टंकार हुई थी जिसे सुन कर ईरानी, कुरानी, पुराणी, जैनी सब के सब कांप उठे; चीन, जापान और अमेरिका के अमर परिवार जाग गये; मिस्र के भव्य मीनार गूंज उठे। उस टंकार ने महात्मा मुन्शीराम को श्रद्धा का मन्त्र सुनाया और वे श्रद्धानन्द बन गये।

कुलपति के जीवन का दीक्षामन्त्र तो आप श्रद्धा —

"उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् । आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु-रात्मैव रिपुरात्मनः"— गुरु दयानन्द ने कहा कि ईश्वर पर विश्वास जीवन का मूलमन्त्र है। बात समझ मे न आई, भटका-लुधियाने की गली गली में— अलख जगाता, झोली पसारी — 'भिक्षा देहि मातः', प्रण तो पूरा करना ही होगा — "प्राण जाहि पर बचन न जाहि" पर प्रण कौन पूरा करेगा! विश्वास हुआ कि प्राणनाथ— घट घट के वासी जगन्नाथ हैं। — "सानुकूले जग-न्नाथे सानुकूलं जगत्त्रयम्", संसार की विपत्तियां नाममात्र हैं, संपत्तियां— काफूर जैसी हैं — "विपदो नैव विपदः संपदो

नैन सपद। विपद्विस्मरणं विष्णो: संपन्नारायणस्मृति:"—

यह है गुरु श्रद्धानन्द जी की आत्मश्रद्धा। जंगल को मंगल बनाया, रेगिस्तां को गुलिस्तां बनाया, प्राचीन आदर्शों का शिलारोपण किया।

श्रद्धानन्द ज्ञानयज्ञ का ब्रह्मा था। पतितपावनी भागीरथी के तट पर पुरस्कायों ने यज्ञ का धूम उठाया, अग्नियां जलाई थीं। इस ने इस बीसवी सदी में ब्राह्मतेज को फैलाया। काशी-विद्यामन्दिर फिर हरिद्वार विद्यामन्दिर क्यों न हो? बालक कहां से आवेंगे? झट अपने दिल के टुकड़े आगे धर दिये—"इन्द्र और हरिश्चन्द्र"। यज्ञ किया—और पूर्ण किया। शिक्षाक्षेत्र में

महाक्रान्ति मचाई।

एक बन्धन बन्धा था — कुल का बन्धन। काट दिया — सन्यास लिया। अब सब का और न किसी का। "सन्यसेत् सर्वकर्माणि वेदमेकं न सन्यसेत्"। श्रद्धा उठी — जामा मसजिद, अकाली तख्त सब को पवित्र कर गई। गंगा जी पर ब्रह्मतेज बखेरा और यमुना मैया पर क्षात्रतेज। यमुना मैया ने तो राज्यों के उत्कर्ष और अपकर्ष देखे परन्तु राजर्षि तो यह पहिला था। संगीनों को सीना सहे, पिस्तौलों को सीना सहे। गुरु ने बहुत कलगी बनाया, [illegible] ने भी यह कर दिखाया। प्यासे को पानी नहीं — अपने हृदय का

गुरु शिष्य.

'श्रद्धानन्द' पुस्तक से

ब्रह्मचारी जब गुरुकुल में प्रविष्ट होता है, उस समय आचार्य उसे विश्वास दिलाता है कि "गुरुकुल तुम्हारी माता है और मैं तुम्हारा पिता स्थानीय हूं", सच्चे अर्थों में पिता की ज़िम्मेवारी समझना, तथा उस का पूर्ण करना, सरल काम नहीं। स्वामी जी एक अलौकिक दिव्य पुरुष थे, जो कि इस ज़िम्मेवारी को अच्छा निभा सके। यह बात उन के गुरुकुलीय जीवन से स्पष्ट है।

मुख्याधिष्ठाता के नीचे प्रत्येक आश्रम में दिन रात चौबीस घण्टों के लिए एक अधिष्ठाता रहता है, जो कि थोड़ा बहुत पढ़ाई का काम भी करता रहता है। यह अधिष्ठाता, आचार्य का ऐसा प्रतिनिधि होता है कि प्रत्येक ब्रह्मचारी अपने को आचार्य के नीचे ही समझे। सात आठ वर्ष की आयु में माता पिता को छोड़ कर शहरों से दूर उस

जंगल में जा कर रहना, दो चार दिन के ही माता पिता आदि सब को भूल जाना और उन के आनंद को कभी स्वप्न में भी अनुभव न करना उस पितृ प्रेम का ही परिणाम समझना चाहिए, जो कि गुरुकुल में आचार्य के प्रतिनिधि अधिष्ठाताओं से मिलता है। अधिष्ठाताओं का स्नेह, ममता, और अपनापन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की सफलता है। महात्मा मुंशीराम जी तो उस प्रेम, ममता, और अपनापन की साक्षात प्रतिमा थे। छोटे, छोटे बालकों के साथ वे बालकों की तरह मिलते और उन में जा कर अपने को भी भूल जाते थे। बड़े ब्रह्मचारियों के साथ ही नहीं छोटों के साथ भी गेंद, कबड्डी, कोटला छपाकी आदि खेलना आप को अपने बड़प्पन के प्रतिकूल नहीं लगते थे। गुरुकुल के उत्सव पर प्रायः सभी ब्रह्मचारियों के संरक्षक - सम्बन्धी इन से मिलने के लिए गुरुकुल आते हैं। सातवीं श्रेणी का ब्रह्मचारी ब्रह्मदत्त अपने किसी भी ~~संबं~~ संरक्षक के न आने पर एक बार बड़ा उदास हो गया। महात्मा जी

ने यह समाचार मालूम होते ही उस को अपने पास बंगले पर मिलने के लिए बुलवाया। ब्रह्मचारी बहुत हंसता हुआ लौट कर आया और अक्सर अपने साथियों से बोला – "हम भी अपने पिता जी से मिल आये" ऐसी अनेक घटनाएं प्रायः घटती रहती थीं। इस पितृ स्नेह का ही यह परिणाम हुआ कि स्नातक होने के बाद भी ब्रह्मचारी आप को "पिताजी" के नाते से ही पत्र लिखते थे और अपने को "आप का पुत्र" लिखने तथा कहने में विशेष गर्व अनुभव करते थे। हवन-सन्ध्या, भोजन, स्नान, खेल आदि दैनिक व्यवहार को वे स्वयं ही निरीक्षण किया करते थे। विशेष अवसरों पर होने वाले खेलों का निरीक्षण तथा संचालन भी स्वयं किया करते थे। विजयदशमी पर होने वाले तीन, चार दिन के सब खेलों में आप स्वयं उपस्थित रहते थे। बाहिर से किसी टीम के गुरुकुल आने पर अथवा गुरुकुल की टीम के कहीं बाहिर जाने पर आप का हृदय ब्रह्मचारियों की जीत सुनने के लिए सदा उत्सुक रहता था। अपने खिलाड़ियों की हि-

गुरु का आप को यह सच्चा गर्व था जिसे कोई छुड़ा नहीं सकता।

आधी रात को उठ कर भी सब आश्रम का एक चक्कर आप अवश्य लगाया करते थे। ब्रह्मचारियों को अपने हाथ से भोजन कराने और भोजन के समय उपस्थित रहने में विशेष आनन्द अनुभव करते थे। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध पिता पुत्र से भी अधिक जिम्मेवारी का है। महात्मा जी इस जिम्मेवारी को पूर्ण तत्परता के साथ निभाते थे, उस का यह परिणाम होता था कि अधिष्ठाता और अध्यापकों को भी उसके निभाने में सदा तत्पर रहना पड़ता था। एक बहुत पुराने अधिष्ठाता कर्तव्यनिष्ठ होते हुए भी केवल इस लिए गुरुकुल से अलग किये गये कि वे ब्रह्मचारियों को बेजा पीटते थे और बार-बार कहने पर भी उन्होंने अपने इस स्वभाव को नहीं बदला। एक दूसरे अधिष्ठाता को ब्रह्मचारियों के भोजन पर अनावश्यक नियन्त्रण लगाकर कठोर व्यवहार करने के कारण पृथक किया गया था।

प्रतिनिधि-सभा में उन के दण्ड करने का प्रश्न उपस्थित होने पर महात्मा जी ने इन कारणों को प्रकट करने में संकोच नहीं किया।

किसी ब्रह्मचारी को कभी कोई कड़ी सज़ा देने का अवसर नहीं आता था। कभी एक आध-बार ऐसा कोई अवसर आता भी तो आप को उस के लिए मर्मान्तक वेदना होती थी। ब्रह्मचारी को सज़ा क्या देते थे, साथ में अपने को भी सज़ा दे लेते थे। सब से बड़ी सज़ा यह होती थी कि ब्रह्मचारी अनुभव करे कि उस ने अपराध किया है और भविष्य में वैसा अपराध न करने का यह संकल्प करे।

किसी ब्रह्मचारी के बीमार पड़ने पर महात्मा जी के लिए रात को सोना भी दूभर हो जाता था। उस के पीछे रात दिन एक कर देते थे। सम्वत् १९६५ में गुरुकुल में टाइफाइड की बीमारी फैली। ब्रह्मचारी नवीनचन्द का उसी बीमारी से देहान्त हो गया। अन्य कई ब्रह्मचारियों को भी

अवस्था भी चिन्ताजनक हो गई थी। ४ भाद्रपद सम्वत् १९६५ में "प्रभावक" उत्कृष्ट समाचार के शीर्षक में ब्रह्मचारियों की अवस्था को बताते हुए नवीन की मृत्यु का जो दुःखपूर्ण समाचार लिखा गया था, उस की कुछ पंक्तियों से पता चलता है कि बीमारी के दिनों में महात्मा जी कितने चिन्तित रहते थे। वे स्वयं लिखते हैं" — "१३ भा-रत के दिन को उसे, ब्रह्मचारी भीष्म को, दस्त लगे। मैं पिछली रात का जगा हुआ आगे दो घंटे ही सोया था कि फिर बुलाया गया। रात भर फिर जागते हुए व्यतीत हुए। कुछ और ब्रह्मचारी को दस्त थे और दर्द कभी इधर कभी उधर।

इस प्रकार अनेक घटनाएं हैं, जिन से महात्मा जी का उदात्त वात्सल्य टपकता है, यह है आदर्श गुरु-शिष्य का सम्बन्ध है, इसी प्रकार का व्यक्ति ही हमारा आचार्य है और हमारा पिता है।

"सिंह की तरह जियें और मरें"

पं. माता प्रसाद जी

जब हम स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी जैसे त्याग वीरों के जीवन पर दृष्टिपात करते हैं तो हम अपने हृदयों में एक गहरी वेदना और एक गम्भीर उल्लास अनुभव करते हैं। वेदना इस लिये कि - मानव समाज भी विचित्र है जो सदा चुने हुए श्रेष्ठ जनों को विपत्ति में डालता है और हर्ष इस लिये कि ऐसी ढालें परमेश्वर ने हमें प्रदान की हैं कि जो जब तक रत्ती रत्ती नहीं छिद जातीं, हम पर आंच नहीं आने देतीं।

स्वामी जी जन्म-योद्धा थे। वे सच्ची मौत मरने के योग्य थे और सच्ची मौत उन्हें प्राप्त हुई भी। वह मौत, जो वीरों को प्राप्त होती है - वह मौत, जो कि अधम शरीर से अविनाशी आत्मा को मुक्त करके स्वर्ग पहुंचा देती है। यह स्वर्ग क्या है? इस सम्बन्ध में हमें एक बुढ़िया की कहानी याद आती है। वह बुढ़िया इस बात के लिये प्रसिद्ध थी कि जो कोई मुर्दा उधर से होकर निकलता था - वह उसके पीछे जाती और लौट कर यह बता देती थी कि वह स्वर्ग को गया या नर्क को! बहुत दिन तक लोगों की समझ में उस का रहस्य न आया - तब एक दिन उस ने बताया कि 'मैं प्रत्येक मुर्दे के जुलूस के साथ थोड़ी दूर तक जाती और देखती हूं कि लोग उस की निन्दा करते हैं या प्रशंसा। यदि निन्दा करते हैं तो वह नरक को गया और प्रशंसा करते हैं तो स्वर्ग को गया'। इस सुन्दर कसौटी पर यदि श्री स्वामी जी को रखा जाय तो स्वामी जी स्वर्ग को गये।

परन्तु स्वर्ग हमारे अनुमान में स्वामी जी के लिये ऐसी वस्तु न थी - जिस का उन्हें लालच होता। जो पुरुष त्याग और दान में आनन्दित और उत्साही

रहता है - स्वर्ग उस के लिये प्राप्त करने योग्य वस्तु नहीं - वह तो मनुष्य-जन्म को, मनुष्य-शरीर को और मनुष्य-जीवन को धन्य कर चुका, यही बहुत है।

शरीर अधम, अविनश्वर और साधारण वस्तु है। जैसे यात्री एक दिन टिकने को कहीं डेरा खड़ा कर लेता है, उसी प्रकार मानों जीवात्मा काम करने के लिये इस हाड़-मांस के शरीर का आश्रय लेता है। इस लिये इस शरीर के नाश होने के प्रश्न को लेकर दुःखी होना बुद्धिमान् का काम नहीं। स्वामी जी का शरीर तो नष्ट होता ही। अब न सही और कुछ दिन बाद होता। परन्तु हमें विचारना यह है कि क्या स्वामी जी ने उस शरीर से कोई ऐसा कर्म किया कि जिस से वह कलंकित होता? क्या स्वामी जी ने मनुष्यत्व का पालन नहीं किया? इस देश में जन्म लेकर - करोड़ें मनुष्य जहां स्वार्थ पर मरते हैं वहां वे सदा परार्थ के लिये मरे, करोड़ें मनुष्य जहां संग्रह करते हैं वहां उन्होंने त्याग किया। वे सदा दुःखी बने रहे, और दुःखियों के मित्र रहे। निरन्तर उन के हृदय ने सात्विक रुदन किया - सात्विक क्रोध किया।

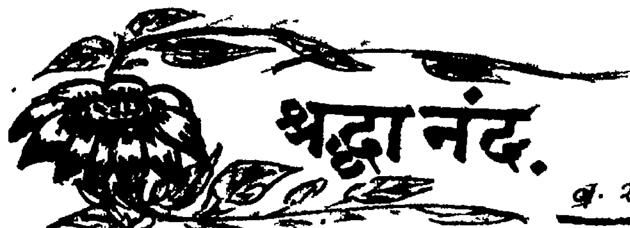
देश के वातावरण में स्वामी जी की जो गन्ध भर गई है वह अभी कई शताब्दियों तक तो बहुत है - आधी शताब्दि तक तो नवीन युग कुछ और ही समय लाएगा और स्वामी जी जो बीज बो गए हैं वह फल चुकेगा। वह पीढ़ी जिसे आज स्वामी जी घुटनों डोलती छोड़ गये हैं स्वामी जी की स्मृति में दिवाली मनायेगी।

हमें रुलाई आती है, क्योंकि हमें स्वामी जी प्यार करते थे - पर यह बात भी तो सच है कि प्यार करने का असली समय तो अब आवेगा। प्यार हृदय का बल है, नेत्रों का सुरमा है - रोम रोम में बिजली की शक्ति है। प्यार जीवन है, प्यार अमृत है - तभी तो देश इस सिरे से उस सिरे तक जी उठा है, मानो स्वामी-जी की वीरता उन के शरीर से निकल कर वातावरण में रम गई है और वह अब सांस के साथ हमारे हृदयों में प्रवेश करके हमें वीर बना रही है।

स्वामी जी अपना कार्य कर गये। जिस लिये उन्होंने शरीर को धारण किया था - वह कार्य कर चुके। जैसे चतुर बजाने वाला बाजा लेकर सुनने वालों को मन्त्र-मुग्ध कर देता है और फिर बाजा हाथ से रख देता है - उसी प्रकार स्वामी

जी अपनी कला हमें दिखा कर उस शरीर ग्रन्थ को यहीं छोड़ चले गये। अब तो हम सभी को स्वामी जी की तरह तप, दान, त्याग, वीरता और चरित्र बल का अभ्यास करना चाहिये। स्वामी जी जब उत्पन्न हुए थे- तब भारत का वातावरण बहुत अन्धकारमय था - स्वामी जी हिम्मत करके बढ़े- ठोकरें खाकर यहां तक आये- और हमारे लिये प्रकाशमय स्थान दिया। आज जब हम जन्मे हैं तो हमारे सामने वे कठिनाइयां नहीं हैं, अब तो हम शेर की सी छलांग मार कर देश के महान् क्षेत्र में मानव जाति के सच्चे जीवन को प्राप्त कर सकते हैं। आओ, भारत के प्यारो! स्वामीजी के देश वासियो! हम स्वामीजी के अमर नाम पर सिंह की तरह जियें और मरें!





श्रद्धानंद.

ब्र. राजेश्वर जी.

श्रद्धानन्द एक वीर योद्धा और योग्य सेनापति थे। उनका सारा जीवन युद्ध में बीता। कभी सामाजिक कुप्रथाओं और कुरीतियों के विरुद्ध युद्ध किया, कभी पोंगापन्थियों की रूढ़ियों के विरुद्ध। मौका आने पर वर्तमान विदेशी सत्ता से लड़ने में भी उन्होंने कसर नहीं छोड़ी। वीरता का खून उनकी रगों में भरा हुआ था।

वीरता की प्रवृत्ति यदि ग़लत शरारत के कामों में लगा दी जाय तो उद्दण्डता कहलाती है। विद्यार्थी अवस्था में स्वामी जी में उस प्रकार की वीरता का भी अभाव नहीं था। स्वामी दयानन्द की एक दिन की सत्संगति ने इनके जीवन को बदल दिया और इनके जीवन को अन्धकार से प्रकाश की ओर डाल दिया। साहस की प्रवृत्ति तो मौजूद थी ही - प्रकाश मिल जाने से इनके लिये उन्नति का मार्ग सुगम हो गया। इसी प्रकाश ने इन्हें 'कल्याण मार्ग का पथिक', बिना

पगडण्डियों को पार करके उन्नति के राजमार्ग पर दौड़ने में समर्थ हो सका।

सबसे पहले स्वामी जी का तात्कालिक धर्म और समाज से पाला पड़ा। उस समय का धर्म भी चौके, चूल्हे और तीर्थों में ही सीमित था। नीची जाति का स्पर्श, मुसलमान और ईसाइयों का मेल हिन्दूधर्म का सफाया करने के लिये काफी थी। एक शब्द में हिन्दूधर्म को स्पृश्यास्पृश्य का रोग लगा हुआ था। आर्यसमाज का अभी जन्म ही हुआ था। उस पुराने रोग से अभी तक आर्यसमाज का भी पिण्ड न छूटा था। ऐसे समय में किसी वीरता के धनी, साहसी तथा दयानन्द के सच्चे शिष्य की आवश्यकता थी जो आर्यसमाज को बाल मृत्यु से बचा कर हिन्दूजाति का उद्धार कर सके। सौभाग्य से लेखराम और स्वामी श्रद्धानन्द जैसे वीर ऐसे ही समय में कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होकर उस समय की आवश्यकता को पूरा किया। स्वामी जी ने बड़े साहस और प्रेम से वैदिक-धर्म-प्रचार का कार्य शुरू किया। घरवालों से लड़ाई ली, चलती वकालत से भी मुंह फेरा और सारा समय देकर आर्यसमाज का पंजाब में संगठन करना शुरू किया। आर्यसमाज ने स्वामी जी के नेतृत्व में पंजाब में क्रान्ति सी पैदा कर दी। इस पर नौकरशाही भी चौंकी और

~~और~~ इस संस्था को भय की नज़र से देखने लगी। आर्यसमाज के वर्तमान संगठन और उन्नति का ~~[illegible]~~ अधिकांश श्रेय श्री स्वामी जी को ही है।

~~[illegible]~~ सैनिक का - लड़ने वाले योद्धा का - काम है केवल विनाश। युद्धक्षेत्र में जो भी शत्रु दिखाई पड़े - उसे बिना किसी दया के कुचल डालना सच्चे सिपाही का कर्तव्य है। इस काम के लिये उसे पहाड़-वन को भूल कर और खाई खोह को भूल कर संहार में लग जाना पड़ता है। रुद्र का ताण्डव नृत्य ही उसका श्रृंगार हो जाता है। सैनिक के रूप में स्वामी श्रद्धानन्द ने भी यही किया। जहाँ कहीं पाखण्ड का बोलबाला देखा, वहीं पिल पड़े और उसे नष्ट भ्रष्ट करके छोड़ा। खाई खोह भूल गये और रात-दिन एक कर दिया। सैनिक का त्याग - तन-मन-धन की परवाह न करने वाला ही कर सकता है। इस त्याग का परिचय स्वामी ने जीवन के प्रारम्भिक काल से ही देना शुरू किया था।

स्वामी जी केवल विनाशक कार्य पर ही नहीं रुक गये। उन्हों ने शिक्षा के रचनात्मक कार्य में हाथ लगाया। जिन में प्राचीन गुरुकुलों के उद्धार की धुन समा गयी थी। लोगों ने इनको पागल और वहमी समझा और खरी खोटी सुनाई। बहुतों ने इन पर ताने भी कसे। पर अपनी धुन में मस्त वे किसकी सुनने वाले थे। अपने अनथक परिश्रम से जंगल में मंगल ~~[illegible]~~

करके दिखा ही दिया। गुरुकुल पद्धति भारतवर्ष के लिये बिलकुल नवीन थी। अन्य विशेषताओं के साथ इसकी एक विशेषता इसका सरकार से स्वतन्त्र होना भी था। असहयोग आन्दोलन से बहुत पहले से ही स्वामी जी असहयोगी थे और उनके असहयोग का ज्वलन्त उदाहरण आजकल के गुरुकुल हैं। अगर स्वामी जी गुरुकुल चलाने में नौकरशाही सरकार से सहयोग कर लेते तो हमें गुरुकुल का रूप आज कुछ और दिखाई देता। पर स्वामी जी यह करते कैसे? उनके हृदय में तो स्वतन्त्रता की दिव्य भावना लहरें मार रही थी। स्वतन्त्रता का ही तो पाठ स्वामी जी ने अपने गुरु दयानन्द से सीखा था। सरकार से मेल करके गुरुकुल को धनवान और यशस्वी बनाने की अपेक्षा वे गुरुकुल को गरीब रखना ही अधिक पसन्द करते थे। इसीलिये जब लार्ड चेम्सफोर्ड ने सहयोग का हाथ बढ़ाया और आर्थिक सहायता के रूप में एक बड़ी रकम देने का वायदा किया तो इन्होंने उस सहायता को और बड़े लाट को ठुकरा दिया और सविनय सहयोग से इन्कार कर दिया था।

स्वामी जी का गुरुकुल को खोलने का मुख्य उद्देश्य सरल, सादे और थोड़े खर्च में संतोष से जीवन बिता सकने वाले नागरिक पैदा करना था।

स्वामी जी गुरुकुल में वानप्रस्थी के रूप में रहते थे। उस रूप में उनको देखने वाले कहते हैं कि उनको देख कर प्राचीन ऋषियों का स्मरण हो आता था। उन दिनों एण्ड्रूज़ प्रभृति विद्वान स्वामी जी के पास प्रायः आते जाते रहते थे।

गुरुकुल में रहते हुए स्वामी जी ने विद्यार्थियों को सच्चे वैदिक धर्म की -और राष्ट्रीयता की शिक्षा दी। उस विशुद्ध शिक्षा में साम्प्रदायिकता की बू नहीं थी - वह शिक्षा राष्ट्र प्रेम और विश्व प्रेम की शिक्षा थी। वह त्याग और तपस्या की मूर्ति ही विद्यार्थियों के लिये अपने आप में एक बड़ी शिक्षा थी। समय २ पर उनकी दी हुई प्रेरणाओं का तो ~~[illegible]~~ अनोखा ही प्रभाव पड़ता था। स्वामी जी की यह आदत थी कि जो कुछ वह विद्यार्थियों से कराते थे - उसे वे खुद भी किया करते थे। इस लिये उनके वचनों का असर भी ज्यादा होता था। मजदूरी आदि के कार्यों के लिये प्रेरणा वे मुख से नहीं करते थे बल्कि खुद कुदाली लेकर पहले काम शुरू करते थे। स्वामी जी की प्रेरणा से गुरुकुल के विद्यार्थियों ने मजदूरी करके एक हज़ार की थैली महात्मा गान्धी को भेंट की थी। यह तब की बात है जब कि महात्मा गान्धी का नाम और काम प्रायः अफ्रीका में ही सीमित था। इस से पता

लगता है कि स्वामी जी विद्यार्थी अवस्था में ही क्रियात्मक राष्ट्रीय-सेवा करने के हक में थे। राष्ट्रीय विचार तो उन्हों ने विद्यार्थियों में कूट कूट कर भर ही दिये थे। एक स्वतन्त्र शिक्षणालय में ऐसी शिक्षा का होना स्वाभाविक ही है।

इस प्रकार बहुत वर्षों तक गुरुकुल में 'गुरु' रहने के बाद स्वामी जी फिर सार्वजनिक कार्यक्षेत्र में कूद पड़े। परन्तु इस बार सन्यासी के रूप में। लोगों को जहां जरूरत पड़ती स्वामी जी अपना तन-मन तक लगा देने को तय्यार रहते। अन्याय के विरुद्ध तो स्वामी जी ने बहुत पहले से ही झण्डा उठा रखा था। हर एक अन्याय को कुचलने में उन्हों ने पूरी सहायता की। एक बार किसी काम को हाथ में लेने के बाद, उसको पूरा करने के लिये कोई त्याग इनके लिये बहुत बड़ा न था। मान को तो ये कुछ समझते ही न थे। अमृतसर में जब विचित्र परिस्थितियों के कारण कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष के पद को कोई स्वीकार नहीं करता था तब इस निर्भीक सन्यासी ने उस पद का भार अपने कन्धों पर लिया था। उस कांग्रेस की सफलता का सारा श्रेय स्वामी जी को ही है। इसी प्रकार गुरु का बाग के सम्बन्ध में स्वामी जी ने सिखों पर अत्याचार होते देखा तो उनसे खाली बैठ कर तमाशा देखते न बना, वे खुद मैदान में उतर आये और सिख भाइयों

कन्धे से कन्धा मिला कर काम किया और कारावास के कष्टों का स्वागत किया।

अन्त तक न रहने की आदत के कारण ही इन्हों ने कांग्रेस हिन्दु महासभा और इन से मिलने वाले यश और सम्मान को तिलांजलि देकर गरीब दलितों में अपना स्थान बनाया और उनकी सेवा में अपना सारा जीवन लगा दिया।

संन्यासी के रूप में स्वामी जी के श्रद्धानन्द का सार्वजनिक जीवन का क्षेत्र भारत की राजधानी दिल्ली रहा है। कुछ वर्षों तक तो दिल्ली के राजनैतिक शासन की बागडोर स्वामी जी के हाथों में रही। वहीं पर उन्हों ने जामा मस्जिद के मिम्बर से हिन्दु और मुसलमान दोनों को एक ही छत के नीचे खड़ा करके भाषण दिया था जो कि दिल्ली के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष के हिन्दु-मुस्लिम एकता के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। वहीं पर उस वीर संन्यासी ने गुरखों की नङ्गी सङ्गीनों के सामने छाती तान कर अपनी अद्भुत वीरता का परिचय दिया था। उस समय दिल्ली की जनता स्वामी जी के इशारों पर नाचती थी। युद्ध के दिनों में वहीं उन्हों ने सेनापति का काम किया था। और उस वीरता

और रोब के साथ कि सरकार दिल्ली की हद में स्वामी जी को हाथ तक न लगा सकी।

स्वामी जी का यह राजनीतिक नेतृत्व दिल्ली को अधिक समय तक न मिल सका। स्वामी जी ने अनुभव किया कि सरकार के अलावा हमारे भाई भी पीड़ितों को कुचल रहे हैं। सरकार के अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाले तो बहुत हैं। परन्तु हिन्दू कहे जाने वाले ६ करोड़ अभागे अछूतों की भी सुध लेने वाला कोई नहीं। दलितोद्धार के प्रोग्राम के लिये स्वामी जी ने कांग्रेस में भी ज़ोर मारा - परन्तु कुछ फल न हुआ। ~~इस प्रोग्राम~~ अछूतों के प्रति कांग्रेस की इस उपेक्षा वृत्ति से दुखी होकर इन्होंने उससे त्यागपत्र दे दिया और दलितोद्धार के कार्य को सम्भाला। स्वामी जी की दूरदर्शिता अब लोग समझ रहे हैं जब कि महात्मा गान्धी ने और सब कामों को छोड़ कर इस काम को ही अपना प्रोग्राम बना लिया है। स्वामी जी ने इस कार्य के महत्व को आज से दसों वर्ष पहले समझ लिया था।

कांग्रेस को स्वामी जी ने भी छोड़ा तथा जयकर, जिन्ना, और मौ. शौकत अली आदिकों ने भी छोड़ा। परन्तु दोनों के छोड़ने

कांग्रेस को छोड़ने में महान् अन्तर है। इन लोगों ने केवल स्वार्थ के लिये कांग्रेस का त्याग किया, जब कि स्वामी जी ने परार्थ और लोकोपकार के लिये। इन लोगों ने इसे सम्मान को दोनों हाथों से लूटने के लिये तो स्वामी जी ने कष्टों का आलिङ्गन करने के लिये। इन लोगों ने पीछे कदम हटाने के लिये कांग्रेस का परित्याग किया- पर स्वामी जी ने आगे कदम बढ़ाने के लिये। कितना अन्तर है।

वे लोग स्वामी जी को ठीक तरह नहीं समझते जो कि उन्हें सम्प्रदायवादी बतलाते हैं। हिन्दुमहासभा को दिये त्यागपत्र में स्वामी जी की स्थिति सम्प्रदायवाद की दृष्टि से बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। अभी- उस दिन पं. सत्यदेव जी विद्यालङ्कार ने स्वामी जी के उस त्यागपत्र का उद्धरण दिया था। उस में स्वामी जी ने स्पष्ट लिखा था कि मैं महासभा को इस लिये छोड़ रहा हूं क्यों कि इसकी नीति सम्प्रदाय वाद की कि नीति होती जा रही। इन शब्दों के बाद यह कहने की आवश्यकता नहीं रहती कि स्वामी जी सम्प्रदायवाद के कितना विरुद्ध थे।

स्वामी जी अपने को वैदिक धर्म का अनुयायी

कहते थे, लेकिन उनके वैदिक धर्म में आज कैसे संकुचित सम्प्रदायवाद की बू नहीं थी। उनका वैदिक धर्म उनके हृदय से भी विशाल था, उनके वैदिक धर्म ने उन्हें दुश्मनों को भी गले से लगाना - शत्रुओं से भी प्रेम करना सिखाया था। इसलिये मुसलमानों ने एक दिन उनको जामा मस्जिद की मिंम्बर पर बिठाकर उनका सम्मान किया था। ऐसा सम्मान आज तक किसने प्राप्त किया है? स्वामी जी की विशाल हृदयता प्रमाण यही है कि तुर्कों की विजय पर मुसलमानों के साथ स्वामी जी ने भी अपनी कुटिया में दीपावलि मनाई थी।

स्वामी जी आजीवन देश और जाति की सेवा के लिये सैनिक की तरह सन्नद्ध रहे, और सौभाग्य से उनको मृत्यु भी ~~वैसी~~ ऐसी मिली जो एक सैनिक के लिये गर्व की चीज होती है। एक कट्टर सम्प्रदायवादी ~~[illegible]~~ अर्थात् मुसलमान ने उनकी हत्या की इस बात से स्वामी जी के सम्पूर्ण निष्पक्ष जीवन का गौरव कम नहीं हो जाता। ~~[illegible]~~ जहां उनकी जान को लेने वाला एक मुसलमान था वहां उनको जीवन देने वाला - बीमारी से अच्छा करने वाला भी मुसलमान था। स्वामी जी की हत्या का किसी सम्प्रदाय से सम्बन्ध जोड़ना अनुचित है क्योंकि यह कार्य बिलकुल वैयक्तिक स्वार्थों से किया गया है। हत्या तो बहुतों की होती है, पर शहीद नहीं होता है जितनी किसी सच्चे काम को करते हुए होते हैं। स्वामी जी शहीद थे [illegible] की शायद [illegible] नहीं। शहीद श्रद्धानन्द जी [illegible]

स्वर्ग का देवता.

कु॰ सुरेश चन्द्र जी

आज से २० शताब्दी पूर्व अन्धकार में एक दिव्य ज्योति चमकी। वह शुभ्र दिव्य ज्योति पहुंचती है गरीब के घर गरीबी मिटाने, रोटी के लिये तरसते हुए भूखे की भूख मिटाने, प्यासे की प्यास बुझाने और कुष्ठ रोग से पीड़ित कोढ़ी की शय्या पर। वह शुभ्र ज्योत्स्ना अपने दिव्य आलोक से इस जगती तल में सत्य अहिंसा को आलोकित कर गई। वह ज्योति सत्य के मार्ग की मार्ग दर्शक बनी। सचमुच सत्य का मार्ग कांटों से बिछा हुआ है। पग पग पर तीव्र असह्य वेदनायें होती हैं। बिलकुल सीधे ऊंचे पहाड़ों पर चढ़ना पड़ता है, बड़ी २ खाइयों को पार करना होता है। बड़े बड़े प्रलोभनों और शत्रुओं का सामना करना होता है। परमात्मा अपने भक्तों की, सत्यपथ के राहियों की कठोरतम परीक्षायें लेता है। भक्तों को अपने अस्तित्व को मिटाना होता है, खुद नाचीज़ होकर अपने को बलिदान करना पड़ता है। यह सत्यपथ का राही उस पर सत्य का प्रचार करता है। मानव जाति के लिये दीपक बनता है। परन्तु उसे भी हाथों और पैरों में कीलें गाड़ कर शूली (Cross) पर चढ़ा दिया जाता है। वह भी अपने खून के कतरों से भरी सत्य की झोली उस दो अक्षर वाले प्रेममय प्रभु के चरणों में समर्पित करता है। यह भक्त कौन? यह क्राइस्ट है।

एक दूसरी आत्मा इस भूतल पर अवतरित होती है। एक निर्जन वन में एक वृक्ष के नीचे वर्षों तक बैठ, तपस्या कर प्रभु की अमर ज्योति को प्राप्त कर सत्य अहिंसा का उपदेश करती है। इसी तरह मानव जाति के आगे 'अहिंसा परमो धर्मः' के सत्य और सुन्दर सिद्धान्त का प्रचार करते हुए अपना प्राण त्याग देती है। यह जंगल में एकान्त में बैठ

सत्य और अहिंसा का उपदेश करने वाला कौन ? यह भगवान बुद्ध थे।

इसी प्रकार भारत में एक और प्रभु का प्यारा पैदा होता है। सच्चे शिव की खोज में अलखनन्दा की चोटी पर जाता है, शेर चीते जंगली जानवरों का मुकाबला करता है, बर्फ के टुकड़े खा कर क्षुधा को मिटाता है। इसी प्रकार सब आपत्तियों को झेलता हुआ, सत्य प्रदीप के प्रकाश से, संसार को प्रकाशित करता है। इस को सांप कटवाया जाता है, हलाहल विष का प्याला दिया जाता है और यह इसी तरह सत्य के लिये अपने प्राण का त्याग करता है। और कहता है 'ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो।' यह प्रभु का प्यारा कौन ? दयानन्द।

उन्हीं महापुरुषों की श्रेणी में इस दयानन्द के एक शिष्य को रखते हैं।

आज भारत की राजधानी दिल्ली में एक मकान के दूसरे मंजिल पर एक सन्यासी रोग शय्या पर पड़ा हुआ है। अपने चिकित्सकों के बारबार विश्वास दिलाये जाने पर भी, कि आप अच्छे हो जायेंगे, वह कह रहा है कि "अब यह शरीर देश की सेवा के लायक नहीं रहा, अब तो दूसरा चोला धारण कर ही देश की सेवा करूंगा।" वह तो दूर दृष्टि रखता था। वह प्रत्यक्ष देख रहा था कि आगे क्या होने वाला है। एक मुसलमान आता है, ज़ीने पर से ऊपर चढ़ जाता है। सेवक आहट सुन पूछता है- कौन ?

आगन्तुक — 'मैं, अब्दुल रशीद।'

सेवक — 'क्यों भाई! कैसे आये ?'

अब्दुल — 'धर्म पिपासा है।'

सेवक — 'स्वामी जी से मिलने की डाक्टरों ने मुमानियत कर रखी है।'

इतने में स्वामी को कुछ सुनाई पड़ा। उसने सबके के सहज स्वभाव से उदार स्वभाव से उस को आने देने के लिये कहा। वह कमरे में आया

को अपने उदाहरण द्वारा सिद्ध किया। वे एक सच्चे कर्मवीर सन्यासी थे। हमेशा उन्नतिशील होना, निराश न होना और कार्य से कभी मुख न मोड़ना ही उन का जीवनोद्देश्य था। वे ठीक सच्चे अर्थों में जीवन के तत्व को समझ सके थे इसी लिये वे अमर हो गये। एक जगह उन्होंने लिखा है – "मेरा जीवन आशातीत व्यतीत हुआ है। इस लिये जब तक दम में दम है, मनुष्य को कभी बेदम नहीं होना चाहिये।" स्वामीजी का यह सिद्धान्त प्रत्येक आत्म-सुधार चाहने वाले नवयुवक के लिये अनुकरणीय है। वृद्ध होते हुए भी स्वामी जी में नौजवानों की तरह उत्साह स्फूर्ति और कार्यशक्ति बनी रही। और वे अपने जीवन में हमेशा विजयी होते रहे।

स्वामी जी एक धनी और ऐश्वर्यसम्पन्न कुल में पैदा हुए थे। लक्ष्मी उन के कुल पर प्रसन्न थी। उन का बाल्यकाल ऐश, आराम और सांसारिक सुखोपभोग में बीता। आजकल के अन्य नवयुवकों की तरह वे भी बचपन में उन सब बुराईयों से, जो कि इस पश्चिमीय शिक्षा और नगर के दूषित वायु-मण्डल में पले प्रत्येक व्यक्ति में आ जानी स्वाभाविक हैं; बरी नहीं थे। परन्तु उन में कोई दिव्य शक्ति तथा पूर्वजन्म के उज्ज्वल संस्कार अवश्य भी विद्यमान थे। आखिर इस प्रकार की अवस्था कब तक रहती! उन्होंने तो संसार में कुछ ऐसे विलक्षण कार्य करने थे, जो केवल उन्हीं के हिस्से में थे। जिसने संसार में प्रकट हो कर दूसरों का मार्गदर्शक बनना था, वह ऐसी परिस्थितियों में कब तक रह सकता था। उन के जीवन ने पलटा खाया। एक अभूतपूर्व क्रान्ति हुई और उन की जीवन सरिता का प्रवाह एकदम उलटी दिशा में बहने लगा। भोग और विलासिता के स्थान पर त्याग और तपस्या उन के जीवन के लक्ष्य बने। परोपकार व्रत में दीक्षित हो कर वे धीरे २ मुंशीराम से श्रद्धानन्द बन गये। उन में आमूल परिवर्तन हो गया। यह उन के जीवन में सबसे बड़ी और मुख्य विजय थी।

स्वामी जी में जहां आदर्श त्याग और तपस्या, उत्कट आत्म-विश्वास और निरभिमानता, अतुलनीय साहस और निर्भीकता, अद्भुत कार्य सामर्थ्य और कर्तव्यपरायणता, भारतीय सभ्यता और संस्कृति के पुनरुद्धार की लालसा, ब्रह्मचर्य के प्रति अगाध श्रद्धा, धर्मनिष्ठा, परोपकार, देशप्रेम और सच्ची राष्ट्रीयता आदि अन्य सब गुण विद्यमान थे वहाँ उन में धैर्य का महान् गुण भी उपस्थित था।

स्वामीजी के विचार और कार्य उस समय के लिये ~~बिलकुल~~ बहुत कुछ नये और आश्चर्यजनक थे। उन्हें अपने जीवन में पग पग पर आपदाओं का सामना करना पड़ा। अपने धार्मिक बन्धनों तथा मिथ्याविश्वासों को काटने के लिये उन्हें अपने पिता तथा अन्य सम्बन्धियों को नाराज़ करना पड़ा। ऐसे २ कार्यों को, जिन्हें अन्य लोगों को हाथ में लेने का साहस भी नहीं होता था, स्वामीजी ने पूरा किया। ~~प्रत्येक क्षेत्र में~~ शिक्षा, राजनीति, समाजसुधार आदि सभी क्षेत्रों में उन का अपने साथियों से विचारों में मतभेद हुआ; जगह २ उन के विरोधी ~~??~~ भी देखने में आते थे लेकिन कहीं भी उन्होंने धैर्य को नहीं छोड़ा। साधारण लोग ऐसी अवस्थाओं में घबरा कर कार्य को ही छोड़ देते हैं या अपने को वश में न रख कर उच्छृंखलता पूर्ण वृत्ति को ग्रहण कर लेते हैं परन्तु स्वामीजी ने ऐसे मौकों पर सर्वत्र आशातीत धैर्य का परिचय दिया। समुद्र की तरह गम्भीर रहते हुए अपने प्रतिपक्षियों के मुखों को बन्द किया। किसीने सच कहा है 'महतां हि धैर्यमविभाव्यवैभवम्।'

इस प्रकार इस महापुरुष में अनन्त गुण और अनेक विशेषतायें थी जिन सब का वर्णन करना इस छोटे से निबन्ध में बहुत असम्भव ही नहीं परन्तु अशक्य है। बड़े आदमियों के दोष और कमियां भी उन के गुण बन जाते हैं। इन्हीं शब्दों के साथ भारतीय राष्ट्र के अद्वितीय महापुरुष, अपने कुल पिता स्वामी श्रद्धानन्द के चरणों में हम भी श्रद्धा से श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं।



कर्मवीर श्रद्धानंद

ब्र० विनयकुमार जी

संसार में तीन प्रकार के मनुष्य दृष्टि में से गुज़रते हैं। उनमें एक श्रेणी के वे लोग हैं जो किसी काम को अपने हाथ में लेते घबराते हैं। उनको अपने पर इतना भरोसा नहीं होता कि वे किसी काम को अपने हाथों सम्पन्न कर सकते हैं। ऐसे मनुष्य दुनिया में इस प्रकार रहते हैं जैसे संसार को उनकी आवश्यकता ही नहीं होती। जो जीवन के लिये आवश्यक साधन तथा आवश्यकताएं हैं उनको भी बटोरने तथा इकट्ठा करने में इस श्रेणी के मनुष्य असमर्थ होते हैं। जीवन में अनेक विकट घटनाओं के आने पर इस कोटि के मनुष्य घबरा जाते हैं और जीवन से उकता कर ईश्वर या दूसरे मनुष्यों को दोष देने लगते हैं। कभी तो इतने निराश हो जाते हैं कि इस जिन्दगी की ममता तथा सांसारिक सुख उपभोगों को तिलांजलि देकर आत्महत्या पर उतारू हो जाते हैं। इस प्रकार के मनुष्य समाज या जाति में अपनी कोई स्थिति नहीं बना कर नहीं रह सकते। समाज इन्हें उपेक्षित भाव से देखता तथा व्यवहार करता है। समाज का यह साधारण नियम है कि जो मनुष्य समाज का कुछ उपकार या सहायता कर सके वही

मनुष्य समाज का सच्चा अंग हो कि इस श्रेणी के मनुष्य विशुद्ध समाज के सच्चे अंग बन सकते हैं।

दूसरी श्रेणी के मनुष्य वे गिने जाते हैं जो काम को आरम्भ तो करते हैं परन्तु किसी बाधा या मुसीबत के आने पर काम को बीच में ही छोड़ कर अलग हो जाते हैं। इस श्रेणी के मनुष्य किसी काम को तो निर्दिष्ट तथा किसी को बीच में अधूरा छोड़ देते हैं परन्तु ऐसे मनुष्य जीवन से सन्तुष्ट अवश्य रहते हैं। ऐसे मनुष्य चाहे संसार का या समाज का कोई उपकार न कर सकें परन्तु अपने स्वतः जीवनोपयोगी साधन तथा समस्या अवश्य बटोर तथा हल कर लेते हैं यद्यपि इस श्रेणी के मनुष्य समाज में बहुत ख्याति बना कर न रह सके या नेतृत्व का कार्य न कर सके तो भी अपने जीवन से निराश होने से बचे रहते हैं और साधारण जनता में इनको गिनती रहती है। जीवन तथा संसार की अवश्य कुछ न कुछ भलाई करते ही हैं।

तीसरे प्रकार के वे मनुष्य हैं जो किसी भी काम को लेते कि जिसको नहीं हैं। उस काम के बीच में चाहे कितनी ही मुसीबतें आवें परन्तु उसे बीच में छोड़ना अपनी शान के खिलाफ, समाज के प्रति तथा जीवन के प्रति कृतघ्नता समझते हैं और उस काम को पूरा करके ही विश्राम लेते हैं। इस प्रकार के

मनुष्य समाज या संसार के अपनी एक ऐसी निशानी छोड़ जाते हैं जो उनकी सदा के लिये अमर कर देती है। जब तक ऐसा प्रकार का व्यक्ति जीवित रहता है तब तक तो संसार को उसकी आवश्यकता होती है बाद में भी उसके आदर्श संसार को एक आदर्श बताता है। जीवित रहते हुए उनका प्रत्येक क्षण समाज तथा जाति की सेवा में व्यतीत होता है। खाते, पीते, उठते, बैठते हर समय जाति की भलाई के बारे में विचार करते हुए व्यतीत होता है। सेवा के कार्य में जीवन के हाथ भी धोना पड़े तब भी नहीं हिचकते और शान से तथा अनेक आशाओं से अविचलित हुए जीवन को बलि चढ़ा देते हैं। परमात्मा की सब से अमूल्य भेंट को इसी में मानते हैं कि किसी दीन या आर्त की रक्षा या सेवा की जाय। इस श्रेणी के मनुष्य महापुरुषों की कोटि में गिने जाते हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द जी भी इन्हीं महापुरुषों की कोटि में हुए थे। उन का हर एक क्षण सेवा कार्य में व्यतीत होता था। उनका जीवन ही मानो सेवा के लिये ही था। दीनों तथा अनाथों का वह सहारा था, गुमराहों के लिये पथ प्रदर्शक तथा ज्योति दाता था। सेवा के कार्य में जितना उसे आनन्द आता था उतना जीवन के और किसी कार्य में आनन्द का अनुभव उसने नहीं किया। तन मन तथा धन से वह गरीबों

. . . .

का बंधु था। धन से सहायता करनी तो बहुत से मनुष्य कर सकते हैं और बहुत से मनुष्य धन द्वारा सहायता करते देखे गये हैं। तन द्वारा भी कुछ हद तक सहायता करने वाले अधिक संख्या में निकल सकते हैं जिनके (उनके) दिलों को अनेक दर्दनाक दृश्यों ने हिलाकर ~~[illegible]~~ रख दिया हो कि वे अपना धन और तन सहायतार्थ समर्पित कर दें। परन्तु मन द्वारा सहायता करना सबसे मुश्किल है। मन में सच्ची अवस्था निर्मल होती है कि वह अपने सुख दुखों का त्याग कर दूसरों के झमेले में पड़े। किन्तु बड़ी बात है कि केवल सब के प्रति सच्ची लगन से सब की हित कामना करे। तन मनुष्य के काबू की चीज है। चाहे जिस काम में उसे लगाना चाहे उसकी इच्छा के मुताबिक लगा सकता है। परन्तु मन मौज के कामों में सब इन्द्रियों के मुताबिक चलना चाहता है। मन तो सदा के दृश्य देखते रहना चाहता है और उनके हर समय सुख का पान करते रहें। संसार में मन के वश आये हजारों मनुष्य नजर आयेंगे परन्तु मन को काबू में रखने वाला कोई विरला ही नजर आयेगा। जिसने मन को काबू में किया हुआ है वह कभी दुनियां में किसी काम में असफल नहीं हो सकता। कामों में उपेक्षा या भय का उदय मन के द्वारा होता है। यदि मानसिक शक्तियां उत्कृष्ट हैं तब किसी से भय खाने की जरूरत ही नहीं और प्रत्येक काम प्रीति से तथा सफलता पूर्वक संपन्न होता है।

स्वामीजी का मन अपने काबू में था। जिस काम में चाहते उसे पूरी शक्ति से लगा सकते थे। इसलिये उन्हें प्रत्येक काम में आशातीत सफलता होती थी और निश्चिन्तता का बोध रहता था। जहाँ मन निर्बल है तो वहाँ निश्चिन्तता का प्रश्न नहीं उठ सकता। भय तथा निश्चिन्तता मन के विरुद्ध हैं। यदि मन में भय का बोझ है तब चाहे कितना ही प्रयत्न करें किसी काम में सफलता नहीं मिल सकती। यदि इसके विपरीत मन में निश्चिन्तता है, न उसे ईश्वर का भय है और न किसी दैवीय आपत्ति का तथा मानुषीय आपत्ति का भय है तब चाहे उस काम में कितनी ही रुकावटें आवें वह कभी भी उस काम को अधूरा नहीं छोड़ेगा। यही बात थी निश्चिन्तता की। स्वामी श्री रामानन्द जी का मन ईश्वर में समर्पित तथा पूर्णतया ... था। उन्हें न लोकापवाद का भय था और न किसी दूसरी शक्ति का डर था। जिस काम में उन्होंने हाथ डाला निश्चिन्तता से उसमें आदि से अन्त तक लगे रहे, तब सफलता दोनों हाथ पसार के उन्हें आशीर्वाद देती थी जो उन्हें उत्साहित किया करती थी जिसके द्वारा उन्हें इतनी प्रसन्नता प्राप्त हुआ करती जो हम जैसे अभागों को सपने में भी नहीं नसीब हो सकती।

स्वामी का प्रधान गुण उनकी कर्मठता थी। मनुष्यमात्र

धारणा करके तब ही काम करना ही है। कर्म के बिना जीवन ही नहीं धारण किया जा सकता। यदि जीवन की रक्षा करनी है और उसे उन्नति तक ले जाने की चाह है तो प्रत्येक मनुष्य को इस कार्य में प्रमुखता देनी पड़ेगी। अतः यह निश्चय ही है कि कर्म के बिना जीवन नहीं तो कर्म से घबरा कर जीवन को नष्ट ही करना है। स्वामी जी कर्म से कभी नहीं डरे, यह काम छोटा है या बड़ा, इससे बदनामी होती है या नहीं इसकी उन्होंने कभी चिन्ता नहीं की। जिस काम में उन्होंने अपनी तथा समाज की उन्नति देखी उसी को जी जान से पूरा करने में जुट गये। हम सब भी कर्म की महत्ता को इसी तरह से जानने वाले हैं और प्रतिदिन कोई न कोई काम करते ही हैं। परन्तु हमारे कामों में तथा स्वामी जी के कामों बहुत अन्तर है। हम जो काम करते हैं केवल अपनी भलाई को नज़र में रख कर करते हैं परन्तु श्री स्वामी जी के कामों में अपनी भलाई की अपेक्षा दूसरों की भलाई अधिक हुआ करती थी। वे किसी को दुःखी देख कर नहीं रह सकते थे। ईश्वर की सृष्टि में हर एक मनुष्य नहीं तो कुछ न कुछ अंश में सबको सुख भोगने तथा आराम से जीवन व्यतीत करने का अधिकार है। इसलिये उन्होंने जितने काम किये उनमें दीनों का विशेष ख्याल रखा है। उनका यह विचार था कि प्रत्येक मनुष्य जिसने भी इस धरती पर जन्म लिया, समान अधिकार रखता है। जो भगवान का

उच्च जाति के हैं उनको यह कभी भी हक नहीं पहुँचता कि वे अपने से कमजोर या अपने से छोटी जाति से घृणा करें और उन्हें अपने समाज से बहिष्कृत करदें। स्वामी सेवक पर, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रों पर या बड़ा छोटे पर कभी भी अत्याचार नहीं कर सकता। ब्राह्मण आदि वर्ण तो सिर्फ समाज की व्यवस्था के लिये मनुष्य के ही बनाए हुए हैं। परमात्मा ने कभी भी जन्म से किसी को विशेष गुणों से विभूषित कर के नहीं भेजा जिससे वह यह कहने का साहस करे कि मैं ब्राह्मण के घर जन्म लेने के कारण ब्राह्मण ही हूँ। ब्राह्मण आदि वर्ण तो सिर्फ समाज गुण कर्मों से देती है। स्वामीजी ने इस विषय में भी प्रबलता से काम किया जिस का असर आजकल के समाज अछूतोद्धार पर पड़ रहा है।

उनके जीवन का प्रधान कर्म गुरुकुल का निर्माण करना था। बहुत दिनों से यह शोर मचा हुआ था कि वर्तमानकाल की शिक्षा से युवक समाज को लाभ की बजाय हानि अधिक होती है युवक देशभक्त की बजाय योरुपीय रंग में रंग जाकर उन्हीं के दास होते जा रहे हैं। युवकों के दिमाग विदेशी शिक्षा से विदेशी ही बनते चले जा रहे हैं उन दिमागों से कभी भारत की हित कामना नहीं निकल सकती अतः एक ऐसे शिक्षणालय का प्रारम्भ होना चाहिये जिसमें भारतीय ढंग से विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाय और रहन सहन भी भारतीय ही हो। उनके उस में आर्यसमाज के कुछ प्रमुख व्यक्तियों ने

D A V College का निर्माण किया। उसमें निश्चय तो यह था कि श्री स्वामी दयानन्द जी की ही पाठविधि चलाई जायगी, आरम्भ में तो कुछ अंशों में यह पाठविधि लागू भी हुई। परन्तु अनेक विद्यार्थियों के सन्तोष के लिये उसे भी अन्य Colleges की तरह उसी ढंग में रंगा जाना पड़ा। आरम्भ में तो महात्मा मुंशीराम जी ने भी डी.ए.वी. कॉलिज को ही गुरुकुल के रूप में देखा था और उनका विचार था कि अब एक कन्या गुरुकुल की स्थापना करनी चाहिये। इसी ख्याल से उन्होंने गुरदासपुर कन्या पाठशाला की उन्नति आरम्भ की थी। पीछे से उन्हें डी.ए.वी. कॉलिज से वे आशायें पूरी होती हुई नज़र नहीं आईं जो वे देखना चाहते थे। अन्त में उनको इस बात के लिये विवश होना पड़ा कि एक ऐसा शिक्षणालय आरम्भ करना चाहिये जिसकी कि इच्छा श्री स्वामी दयानन्द जी ने कर रखी थी। यह प्रस्ताव प्रतिनिधिसभा के सामने पेश किया गया। सदस्यों ने यह काम महात्मा मुंशीराम जी को ही सौंपा। उन दिनों यद्यपि महात्मा जी का प्रभाव अनेक आर्यसमाजों में स्थापित हो चुका था तथापि उनको धन संग्रह करने में कितनी कठिनाइयां उठानी पड़ी थीं वे आप अन्दाज़ा लगा सकते हैं। परन्तु उनकी कर्मनिष्ठा के सामने वे कठिनाइयां तुच्छ थीं और इतना बड़ा कार्य सम्पन्न हुआ इसका जीता जागता प्रमाण इस उन्नत रूप में इस गुरुकुल को देख कर पाया जा सकता है। कर्मठ व्यक्ति महान् कभी काम से मुख नहीं मोड़ा करते स्वामी जी भी कर्मपरायण थे। अतः उन्होंने भी काम से मुख मोड़ने की कभी इच्छा या वृत्ति नहीं की। इसी में ही उनकी महानता है और प्रतिष्ठा है।

अमर आत्मा

ब्र॰ भगवद्दत्त जी.

हमारे अन्तस्तल में जो उमंगें उठा करती हैं - हमारे मन में जिन दिव्य भावनाओं का आविर्भाव होता रहता है - और जिन महान् आत्माओं में महत्वाकांक्षा के बीज बोये जाते हैं - वे आत्म-विश्वास रूपी जल से सींचे जाकर समय पर अपना फल लाते हैं। जब दुर्भेद्य अल्पस पर्वत को नैपोलियन ने लांघा ही था, बुद्ध ने शैतान पर विजय पाई थी - तो क्या २० सहस्र रुपया इकट्ठा नहीं हो सकता था।

आजकल की दृष्टि से २० सहस्र रुपया कोई बड़ी बात नहीं, परन्तु प्यारे भाइयो उस अज्ञानमयी विकट परि-स्थिति में गुरुकुल की स्थापना विषयक नवीन और अद्भुत विचार पर डटे रहना. और दुनिया के सामने अनहोनी बात को सम्भव कर देना, मामूली काम न था - विचार प्रवाह में बहते हुए इस आदर्श को उसने क्रियात्मक रूप दे दिया - कहा जाता है कि लार्ड कर्जन के सुधार में से शिक्षा सुधार भी एक सुधार था - समय पर आकर मैकाले के

शिक्षा-विषयक सिद्धान्तों ने अपना रङ्ग दिखाया और देश को पश्चिमीय सभ्यता के रङ्ग में रंग दिया। शिक्षा ने देश की प्राचीन भाषाओं और सभ्यता पर कुठाराघात किया- इस शिक्षा ने बड़े२ स्कूल पैदा कर दिए और मौलिकता को कोसों दूर फेंक दिया। केवल इस शिक्षा का उद्देश्य सरकार के शासन तथा अधिकारों के बनाए रखने में, सहायता देना- तथा राष्ट्रीय भावों और उन्नति को दबा देना था। यह विदेशीय शिक्षा प्रणाली फैली और खूब फैली, इसने भारतीय नवयुवकों के मनों पर खूब जबरदस्त रंग जमाया। और भारतवर्ष शिक्षा की वास्तविक दौड़ में अन्य देशों से पिछड़ गया।

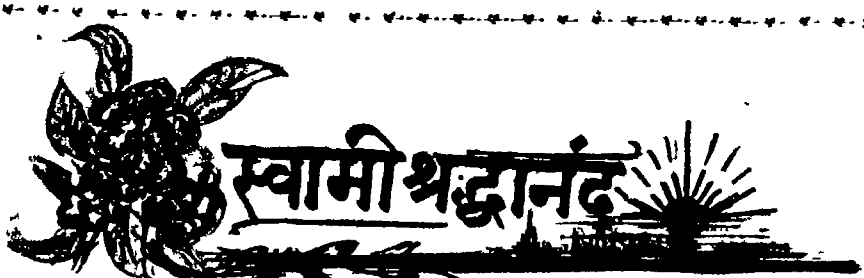
गुरुकुल के विचारों पर खूब दिल्लगी हुई- कुलपिता को पागल बताया गया- और जनता ने गुरुकुल के आदर्श को हवा में ही उड़ा दिया, परन्तु कुलपिता को तो यह धुन सवार थी कि यदि किसी देश की उन्नति हो सकती है तो उसकी अपनी ~~संस्कृति~~ संस्कृति से ही हो सकती है। भारतवर्ष की न कोई भाषा है और न कोई सभ्यता है और न कोई संस्कृति है। यदि भारत अपने प्राचीन ~~[illegible]~~ उन्नति शिखर पर पहुँचना चाहता है। तो उसे अपनी संस्कृति का ही अवलम्ब लेना पड़ेगा। अपनी सभ्यता को ही अपनाना पड़ेगा और अपनी गीर्वाण वाणी को कण्ठ से लगाना होगा, तभी राष्ट्रीय

भावों का जन्म होगा। प्यारे पाठकवृन्द, महर्षि दयानन्द के पक्के शिष्य ने गङ्गा के पार कांगड़ी गाँव के पास कपड़ा लगा ही तो दिया। अहा वह दिन कितना स्वर्गीय होगा, जिस दिन उस माली ने वाटिका लगायी थी और इस वाटिका के लिये अपना खून और पसीना एक कर दिया था। तभी तो उस तपस्वी माली की यह लहलहाती वाटिका दुनियाँ के अन्दर अपना सानी नहीं रखती।

जब २ महासभा के द्वारा राष्ट्रीय उत्थान का प्रयत्न हुआ तब २ राष्ट्रीय शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत हुई और जगह २ राष्ट्रीय संस्थाएँ खुलीं, परन्तु त्याग में, कष्ट सहन में, आत्म विवेचन में और तत्वपालन में गुरुकुल सबसे बढ़ा चढ़ा है। राष्ट्रीय कामों में भी गुरुकुलीय ~~स्नातकों ने~~ छात्रों ने कभी भी टेढ़ा मुँह नहीं किया। परन्तु कैसी भी परिस्थितियाँ न हों गुरुकुल ने अपनी शिक्षा कायम रखने में [illegible] की और उस तपस्वी के तप का प्रभाव इतना था कि आज भी गुरुकुल भूमि में उस वीर सन्यासी की आत्मा बोल रही सी है :- खण्डों को देखते ही मेरे सामने तो बैठी हुई गम्भीर शान्त और दिव्य भावनामयी वह प्रतिमूर्ति एक बार तो निराकार माया (   ) का काम कर जाती है।

अदृश्य वस्तु स्थिति की प्रतिद्वन्द्विता में चाहे कितने ही युक्ति समूह के प्रतिबन्ध लगावें, किन्तु दिल की भावना सरिता को रोक नहीं सकते। खण्डों को देखकर दिल एक बार उमड़ ही पड़ता है और आनन्द से नयनों के रास्ते अश्रुरूप में उस परमपवित्र दिव्य आत्मा के चरणों पर

आत्म समर्पण कर देता है। आज वह मूर्ति खडुवे के नीचे नहीं बैठी। जरा खडुवे से तो पूछो कि ए कृतघ्न तू अपने स्वामी के विरहानल से भस्म क्यों नहीं हुआ, तू सूखा क्यों नहीं? तब वहाँ से गम्भीर दिव्य ध्वनि निकलती है कि उस महात्मा के भक्तों के अश्रुबिन्दुओं से आज तक यह लहलहा रहा है और उस दिव्य मूर्ति के सन्देश को सुना रहा है। अहो भूधार तू धन्य है जिसने तूने उस भव्य मूर्ति के चरणरज को सिर माथे चढ़ाया और चरणकमलों की सेवा में ही तूने अपना तन वार दिया और उसके पीछे भी उस की कुटिया को नहीं छोड़ा।



स्वामी श्रद्धानंद

ब. शिवकुमार जी.

स्वामी श्रद्धानन्द महापुरुष थे। महापुरुषों के काम भी महान होते हैं। यही एकमात्र विशेषता है जो कि साधारण पुरुषों और महा-पुरुषों में भेदसूचक सीमा का काम करती है। संसार में उत्पन्न हुआ प्रत्येक मनुष्य कोई न कोई काम अवश्य करता है, लेकिन महा-पुरुष जो काम करते हैं, उनके साथ कोई न कोई विशेषता अ-वश्य होती है, जो कि उन्हें साधा-रण आदमियों से ऊंचा उठा देती है। फिर श्रद्धानन्द तो सन्यासी थे, उनके तो हर एक काम महान होने ही चाहियें।

अब देखना यह है कि कौन से वे काम थे, जिन्होंने स्वा. श्रद्धानन्द को महापुरुष बनाया! यों तो महान् आत्मायें, एक नहीं अपितु सैंकड़ों ऐसे काम कर जाती हैं, जिनसे उनके महत्व की परख हो सकती है, लेकिन उनकी ख्याति बहुत सी सेवाओं से नहीं हुआ करती। अगर होती भी है तो उन लोगों में जो कि शिक्षित हों, जिन्होंने महान-आत्माओं के जीवन चरित्र को आद्योपान्त पढ़ा हो। शेष सर्वसाधारण जनता तो महान आत्मों

के खास काम को ही देख कर उन का गुणगान करती है। इसीलिये प्रत्येक महापुरुष में ऐसी विशेषता अवश्य पाई जाती है, जो कि उसकी अपनी ही हो, जिस विशेषता के कारण सर्वसाधारण जनता में भी उसका नाम अमर रहता हो। २० वीं सदी के एक रूसी किसान को और कुछ नहीं पूछना, वह तो केवल इतना ही पूछना चाहता है कि रूस में ज़ारशाही का अन्त किसने किया। उसे इससे मतलब नहीं कि ज़ारशाही के अन्त करने वाले को कौन २ सी परिस्थितियों में से गुजरना पड़ा, उसने किस साधन से रूस की सम्पूर्ण जनता को अपने प्रवचनों से मन्त्रमुग्ध कर दिया; इन सब बातों की विवेचना किये बिना ही वह ग्रामीण

किसान ज़ारशाही के अन्त करने वाले की खोज करेगा; और खोज कर लेने के बाद अपनी किसान-सुलभ भेंट को उसके चरणों में सादर समर्पित करेगा। यही व्यवहार हर एक नेता के प्रति सर्वसाधारण जनता का होता है। भारतवर्ष के उन प्रान्तों के मुसलमानों को जो कि अशिक्षा की चरम सीमा तक पहुँच चुके हैं, महात्मा गान्धी के विषय में केवल इतना ही पता ज्ञात है कि ब्रिटिश गवर्नमेन्ट इस मुट्ठी भर हड्डियों से बने देह को जेल में डाल देती है, लेकिन वह पतला सा आदमी ऐसी युक्ति लड़ाता है कि फौरन जेल से बाहर आ जाता है। सर्वसाधारण जनता सर्वदा महान् पुरुषों के विशेष कामों पर

नज़र आ जाती है। सर्वसाधारण ही नहीं, अपितु प्रत्येक श्रेणी का आदमी महान् आत्मा के विशेष काम को देखना चाहता है। और ख़ास कर अपरिचित आदमी तो देखेगा ही उसी काम को जिससे कि महान् आत्मा का महत्त्व प्रगट होता है। केवल इसी दृष्टि से विचार करने पर हम स्वा० श्रद्धानन्द जी के मुख्य कामों को दो विभागों में विभक्त कर सकेंगे, प्रथम दलितोद्धार या शुद्धि; और द्वितीय गुरुकुल की संस्थापना। यह दो काम ही ऐसे हैं जिनसे स्वा० श्रद्धानन्द जी की पहिचान हो सकती है। यही दो काम मुख्य रूप में श्रद्धानन्द जी का परिचय प्राप्त करने में पर्याप्त हैं।

हिन्दु-जाति की संख्या दिनों दिन घटती जा रही थी, रोज़ का रोज़ एक हिन्दु का दिल टूट जाता जा-रहा था। उन दिनों तो सचमुच अन्धेरखाता था, जिसके जी में आती हिन्दु की चुटिया और यज्ञोपवीत काटता और मुसलमान या ईसाई बना लेता। लेकिन इस पर भी हिन्दु-जाति की अन्धी देवता चुपचाप इस नाटक को देखती ही रही, उसमें इतनी भी शक्ति न थी कि उठ कर इसका प्रतिकार कर सके। एक धर्म से दूसरे धर्म में जाना कोई बुरी बात नहीं। अगर किसी को किसी धर्म में कोई विशेषता नज़र आती है, तो भले ही वह उसे अपना ले, इसमें किसी को भी आपत्ति नहीं होनी चाहिये, और न ही होती है। लेकिन आपत्ति

तो उस समय उत्पन्न होती है जब कि किसी धार्मिक आदमी को नानाविध झूठे प्रलोभनों के द्वारा अपने धर्म से च्युत कर दिया जाय। वस्तुतः इसी शस्त्र से ही उन दिनों अधिकतर हिन्दु मुसलमान हो रहे थे जब कि स्वा० श्रद्धानन्द जी ने शुद्धि का बीड़ा उठाया। स्वामी जी ने वस्तुतः एक बहुत बड़ा काम किया। यह सामयिक था चाहे भले असामयिक ही क्यों न हो। क्योंकि ऐसे आदमी ही उसे कर सकते थे, और उन्हीं ने ही किया। जब तक वह ज़िन्दा रहे सारे भारत में शुद्धि की धूम रही। और अन्त में उनके प्राण भी इसी के कारण गए।

उनका दूसरा और सबसे विशेष कार्य गुरुकुल की स्थापना के रूप में था। गुरुकुल की स्थापना उनका मौलिक काम था। स्वामि दयानन्द ने उन्हें इसके लिये इशारा ही किया था। उस इशारे को क्रियात्मक रूप में परिणत करते हुये स्वा० श्रद्धानन्द जी ने गङ्गा के किनारे पर एक विशाल गुरुकुल की स्थापना की। जिसकी स्थापना का उद्देश्य भारतीय विद्यार्थियों को भारतीय शिक्षा देते हुये आर्य नागरिक बनाना था। वस्तुतः यह उद्देश्य, भारत की तत्कालीन अवस्था को दृष्टि में रखते हुये बहुत ही ऊंचा था। सरकार जैसी शक्तिशाली चीज़ से उन दिनों मुकाबला करना कोई खेल काम न था। जिन विद्यार्थियों के सामने स्कूलों और कालेजों के अनेकविध प्रलोभन मौजूद हैं, उनको अपनी ओर खींच लाना एक बहुत बड़ा काम था। हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वह उद्देश्य बहुत ऊंचा था और जिस आदमी

के दिल में यह था, वह भी कोई असाधारण व्यक्ति था, जिससे प्रभावित होकर लोगों ने पुत्रों को एक उद्देश्य की पूर्ति के लिये, उनको समर्पित कर दिया। यह उद्देश्य चाहे अब तक भी पूर्ण न हुआ हो, लेकिन इसके उच्च होने में किसी को ज़रा भी सन्देह नहीं। उद्देश्य की पूर्ति में भी वह मज़ा नहीं जो कि उसकी अपूर्ति में है। उद्देश्य हमेशा ऊँचा होना चाहिये, और मनुष्य, मनुष्य समाज या किसी संस्था को शनैः २ उस ओर बढ़ते जाना चाहिये। उद्देश्य की पूर्ति की ओर तन्मयता से लगना उतना ही महापुरुषों द्वारा दी हुई गति उत्तम गति हुआ करती है। स्वा० श्रद्धानन्द जी ने आर्यजनता को उस मार्ग की ओर धकेल दिया, जिससे कि गुरुकुल के उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है; उसी उनके धक्के से अब भी गुरुकुल येन केन प्रकारेण लुढ़क रहा है, देखें गुरुकुल का यह लुढ़कना बन्द हो जाता है या इसमें कुछ वेग आता है।

यह हैं दो काम जिनसे सचमुच स्वा० श्रद्धानन्द जी महापुरुषों की पंक्ति में आ सके।

[illegible]

ब्र. रामनाथजी

(१) व्यक्ति में –

महात्माओं का व्यक्तित्व ऊँचा होता है, इसीलिये वे दुनियाँ में पूजे जाते हैं। उन्होंने मानव-जाति का कोई बड़ा उपकार किया होता है, इसलिये दुनियाँ उन्हें मान की दृष्टि से देखती है। लेकिन कोई भी व्यक्ति ऐसे सार्वजनिक कामों में सफलता कब प्राप्त कर सकता है? यदि उसके व्यक्तित्व का असर जमता या हो। अगर उसके व्यक्तित्व की छाप लोगों पर हो तो जिधर भी वह जायगा, जिस क्षेत्र की ओर कदम बढ़ायेगा, उस ओर सफलता और विजय उसके हाथ में होगी।

स्वामी जी के व्यक्तित्व का असर किसी भी प्रकार कम नहीं था। बचपन से ही उन्होंने इस बात को सीखा था कि जो काम दूसरों से कराने की चाह हो, पहले स्वयं उसका अनुभव कर लेना चाहिये। सत्यप्रतिज्ञता, स्पष्टवक्तृता आदि बहुत से गुण तो उनकी पैतृक देन थे। शरीर में, विद्या में, आचरण में - सभी में वे ऊँचे उठे हुये थे। उनका जी-

बन बड़े २ प्रलोभनों में से गुज़रने के बाद नियमित बन पाया था। चढ़ती जवानी में लोग प्रायः जिन दुर्व्यसनों का शिकार हो जाते हैं, उनमें पड़ते २ अपने आप को उन्होंने बचाया था। शुरू में इतने प्रलोभनों का सामना कर चुकने पर, आगे चल कर उनमें इतनी शक्ति आ गई थी कि कोई बड़े से बड़ा प्रलोभन भी उन्हें सत्य से डिगा नहीं सकता था। उन्होंने अपने जीवन में कई कड़वे अनुभवों को लिया था, और ये अनुभव ही कई जगह उनकी सफलता में कारण होते थे।

ऊँचे लोगों का इन सांसारिक धोखा-धड़ी के व्यवहारों से मन उचाट हो जाता है, वे इनमें फंसे रहना पसन्द नहीं करते। यही कारण है कि स्वामी जी ने भी वकालत को झूठ और धोखा सीखने और सिखाने का पुर्जा समझ कर, धन-दौलत की कुछ भी परवा न करके सदा के लिये छोड़ दिया। स्वामी जी ने देश और जाति के उपकार के लिये जो काम किये सो तो किये ही, लेकिन उनका व्यक्तित्व स्वयं इतना ऊँचा था, कि उनके गुणों का जितना भी मान किया जाय, थोड़ा है। उनका यह अटल सिद्धान्त था कि जब तक अपना सुधार न कर लिया जाय, तब तक दूसरों का सुधार किया ही नहीं जा सकता। कई स्वयं को बिना देखे ही, दूसरों को बहुत कुछ बताते फिरा करते हैं। श्रद्धानन्द ऐसों में न थे। वे जो कुछ कहते थे, पहले स्वयं आचरण में ले आते थे। अपने विद्यार्थियों को वे आत्मशुद्धि के विषय में समझाते रहते थे; यम-नियम के

पालन करने और करवाने में विशेष ध्यान देते थे। स्वयं उनके विष-
य में प्रसिद्ध है कि लोगों ने उन्हें रेलगाड़ी के डिब्बे में भी व्यायाम क-
रते देखा था। प्रातः ४ बजे से ही उठ कर सब नित्य-कर्म कर लिया कर-
ते थे। अपने विद्यार्थियों को कोई बात सिखाने का उनके पास यही
ढंग था। जिसका व्यक्तित्व इतना ऊंचा हो उसकी बातों का प्रभाव वि-
द्यार्थियों पर न पड़े यह कैसे हो सकता था?

उनका बोलने का तरीका बहुत मधुर और प्रिय था। कई लोग उन-
से नाराज़ होकर जोश में भी बात करने लग जाते थे, पर उसका उत्तर
भी वे शान्त होकर ही देते थे। ब्रह्मचर्य के तो वे बड़े हामी थे; सदा
अपने विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य का उपदेश करते रहा करते थे। अपने
विद्यार्थी को वे ब्रह्मचारी नाम से ही पुकारना पसन्द करते थे। यदि कि-
सी के मुख से 'लड़का' शब्द सुन लेते थे तो बड़े नाराज़ हुआ करते
थे। जहाँ तक हो सकता था, अधिक से अधिक ब्रह्मचर्य का वायुमण्ड-
ल बनाना चाहते थे। अहिंसा की वृत्ति भी उनकी बढ़ी हुई थी। साथ
ही साहस और पराक्रम भी कम न था। लोगों ने उनके गुरुकुल के जी-
वन में रात्रि को उनके तख्त के नीचे चीते, भेड़िये तक को बैठे देखा
था। लेकिन वे इसकी कुछ परवाह न करते थे, हमेशा बाहर खुली ह-
वा में ही सोते थे। वृद्धावस्था में भी उन्होंने व्यायाम को न छोड़ा था।
यही कारण था कि शरीर में बीमारियों के होते हुए भी वे इतनी लम्बी
आयु तक पहुँच सके। उनके गुणों और विशेषताओं का कहाँ तक वर्णन

किया जाय, वे तो सचमुच गुणों की खान थे। विदेशों से जो लोग गुरु-कुल को देखने आये, उन्होंने गुरुकुल के विषय में कुछ लिखने से पहले आचार्य श्रद्धानन्द की विशाल भव्य मूर्ति को अवश्य याद किया। जहाँ गुरुकुल की शिक्षा-प्रणाली उन्हें आकर्षक प्रतीत हुई, वहाँ साथ ही श्रद्धानन्द के विशाल देह और शान्त आकृति का उन पर ऐसा असर पड़ा कि उसे भुलाये न भूल सके। यह थी उनके व्यक्तित्व की छाप!

(2) समाज में -

स्वामी जी ने अपने व्यक्तित्व या जीवन को जिस ढंग से ढाला सो तो है ही; लेकिन उनका सामाजिक क्षेत्र में क्रियात्मक कार्य गुरुकुल की स्थापना से प्रारम्भ होता है। यह उनका ही प्रथम साहस था कि लॉर्ड मैकॉले की शिक्षा-सम्बन्धी नीति के विरोध-स्वरूप, मुकाबिले में खड़े हुये। शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने अद्भुत क्रान्ति की लहर पैदा कर दी। स्वामी दयानन्द के निर्वाण के पश्चात् उस समय के आर्यसमाजियों में यह ताकत नहीं रह गयी थी कि वे ऋषि के शिक्षा-सम्बन्धी सन्देश को क्रियात्मक रूप में लोगों के सामने रखते। यदि श्रद्धानन्द ने इस कठिन कार्य की ओर अपना कदम आगे न बढ़ाया होता तो ऋषि की आवाज़ जैसे गूंजी थी, गूंज कर ही रह जाती। आज उसके क्रियात्मक प्रचार का साधन हमारे पास कोई न होता। लोग शायद उसके क्रियारूप में लाने को असम्भव ख्-

समझते हुये, उस पर बहस ही करते नज़र आते।

जहाँ स्वामी जी ने विद्यार्थियों के लिये नई शिक्षा-पद्धति को चलाया, वहाँ स्त्री-शिक्षा के प्रचार के लिये भी उन्होंने अपनी तरफ से कुछ उठा न रक्खा। आज जगह २ गुरुकुल और कन्या पाठशालायें देख कर कौन है जिसे श्रद्धानन्द की याद नहीं आजाती! गुरुकुलों के आदि जन्मदाता कुलपिता के प्रति श्रद्धाञ्जलि चढ़ाने को मन झुक जाता है! आज जो अनेक गुरुकुल दिखलाई देते हैं वे सब श्रद्धानन्द के श्रम से सींचे हुये पौधे की ही कलमें हैं।

दूसरा मुख्य कार्य, जिसके लिये आर्यसमाज और हिन्दू जाति सदा उनकी ऋणी रहेगी 'शुद्धि' है। उन्हें अपनी जाति, सचमुच बड़ी प्यारी थी। अपने करोड़ों भाइयों को अपने से बिछुड़ा हुआ वे न देख सकते थे। इसीलिये उन्होंने शुद्धि के झण्डे को फहराया। शुद्धि उन्हों-ने इस ख्याल से नहीं कि वे मुसल्मानी या ईसाई धर्म को सहन न कर सकते थे, बल्कि इसलिये कि उनके दिल में दर्द था, वे अपने ही भाइयों को इस पिशाची नर-पिशाची धर्म में उलझा नहीं चाहते थे। वेद-भजनों, बड़ी उत्सुकता के साथ राम और कृष्ण के त्यौहारों की प्रतीक्षा करने वालों के हाथों, मुसल्मानी धर्म का चोला पहना कर वे गौऐं कटती नहीं देख सकते थे। यही भावना थी, जिसने उन्हें शुद्धि के कार्य में प्रेरित किया। और इसी सच्ची भावना के बल पर

शुद्धि के कार्य में ही वे हंसते २ बलिदान हो गये। शुद्धि के संगठन के जोश से न करते थे। मुसलमान भाई से उन्हें कोई द्वेष न था, वे तो सबसे इस विषय में बातचीत किया करते थे। कई मुसलमान उनके पास आते थे, और अपनी शंकाओं का निवारण कर चले जाते थे। बीमार होते हुये भी उन्होंने अब्दुल रशीद को धर्म-विषयक गुफ्तगू करने से बिल्कुल इन्कार नहीं किया था।

कई लोग उनके शुद्धि के कार्य को, दो धर्मों के बीच लड़ाई झगड़े की जड़ समझते हैं। लेकिन यदि वे शुद्धि के नाम से ही न घबरा कर, उनकी भावना और मुसलमान भाइयों तक की उनके प्रति सहानुभूति को देखें, तो उन्हें समझने में देर न लगेगी कि वही कार्य, जिसे वे वैमनस्य की जड़ समझते हैं, किस प्रकार दो धर्मों को मिलाने में कारण बन सकता था। जहाँ उनकी मृत्यु एक मुसलमान के हाथ हुई, वहाँ उनकी मौत पर आँसू बहाने वाले मुसलमानों की संख्या भी कम नहीं। उनका यह कार्य किसी भी मुसलमान भाई का जी दुःखाने या उसे चिढ़ाने के लिये नहीं था, वे तो अपने ही भाइयों को वापिस ले रहे थे।

देर से बिछुड़े हुये अपने भाई को प्रेम से गले लगाने से यदि दूसरे को दर्द होता है तो होवे - उससे भाई भाई का मेल नहीं टूट सकता। उस दर्द का कारण मेल नहीं, उसकी नादानी है जिससे दर्द होता है। गाँव के गाँव मलकानों के थे, जो केवल नाम से मुसलमान थे; जो बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा किया करते थे कि कब -

हिन्दू जाति में इसे गले लगाने वाला कोई पैदा होता है। उनको यदि गले लगाया तो श्रद्धानन्द ने क्या बुरा काम किया। हिन्दुओं की लड़कियाँ मुसलमानों से भगायी ले जाकर, मजबूर हो जाती थीं कि वे अपने प्यारे हिन्दू धर्म को सदा के लिये छोड़ दें। उनका हृदय टुकड़े २ हो जाता था, जब हिन्दू जाति की सन्तानें उन्हें कहती थीं कि तुम मुसलमान के स्पर्श से नापाक हो गयी हो, तुम्हें अपने आप को हिन्दू कहने का अधिकार अब नहीं रहा। वे रोती थीं, बिलखती थीं उनकी पुकार को कोई न सुनता था। उनकी पुकार को यदि श्रद्धानन्द ने सुना, तो कौन सा बुरा काम किया? हिन्दू जाति अपनी सन्तानों को धक्का दे देकर बाहर निकाल रही थी, यदि श्रद्धानन्द ने आकर उसे चेता दिया, तो क्या गुनाह किया यदि सोते को जगाना, मुर्दे को जिलाना अपराध है तो श्रद्धानन्द को भले ही दोषी कह लो, लेकिन उससे श्रद्धानन्द की शान में तनिक भी आंच न आयेगी।



कर्मवीर श्रद्धानंद.

किसी वृक्ष को उसकी प्रारम्भिक अवस्था में झुकाना मोड़ना या उखाड़ फेंकना एक बच्चे के लिए भी बहुत सहज काम है। परन्तु ज्योंहि लगभग १५-२० साल बाद वह अपनी पूर्ण यौवनावस्था में आजाता है तो एक बड़े मल्ल के लिये भी उसको उखाड़ना तो दूर रहा हिलाना तक भी कठिन होजाता है। वर्षा ऋतु से पूर्व किसी नदी के प्रवाह को रोकना या किसी अन्य दिशा में फेर देना उतना ही आसान होता है जितना वर्षा ऋतु में कठिन। यही सम्पूर्ण प्रक्रिया मनुष्य के जीवन के भी साथ भी होती है। एक बालक को जिस वायुमण्डल में रक्खा जाता है वह उसी के अनुकूल ही आगामी जीवन के लिए अपनी परिस्थिति बना लेता है। बचपन के संस्कारों का जाल ऐसा दृढ़ और जटिल होता है कि उसमें फंस कर उस को काटना बड़ा ही कठिन है और कभी २ तो असम्भव भी हो जाता है। ठीक इसी प्रकार बालक-मुन्शीराम कोई भी किसी तरफ़ झुका सकता था परन्तु युवा-मुन्शीराम की बागडोर को वश करना किसी साधारण मनुष्य का काम नहीं था। इस उच्छृंखल घोड़े को वश में करने के लिए किसी अभ्यस्त चाबुकसवार की जरूरत थी। साधारण साधुओं के लिए तो इसकी एक ही दुलत्ती की फटकार पर्याप्त थी। जिसने अपना सम्पूर्ण आयुष्काल का समय भोग और विलासों के लिए समर्पित कर दिया हो, पीछे उसका सब को ब्रह्मचर्य और तपस्या का पाठ पढ़ाना एक चमत्कार ही था। कम से कम मुन्शीराम के लिए यह

बात खोलकर आने लगती थी। मुन्शीराम के जीवन का पूर्वार्द्ध ऐसी २ घृणित घटनाओं से परिपूर्ण भरा पड़ा है कि किसी को यह आशा — कि विलासी मुन्शीराम समय आने पर तपस्वी मुन्शीराम भी बन सकता है — स्वप्न में भी न हो सकती थी। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" इस व्यापक और प्रसिद्ध लोकोक्ति को किसी ने गलत करके दिखाया तो वह मुन्शीराम का जीवन था। अपने यौवन विहार के जीवन में कोई ऐसा दुर्गुण न था जिस से मुन्शीराम बचा रहा हो। यथेष्ट धन और विलासमय जीवन एक ऐसे विशाल छत्ते के समान है जिसके आगे पीछे असंख्य मधु-मक्खियों रूपी बुराइयाँ भिनभिनाया करती हैं। प्रेममयी माता का स्नेह का हाथ उठ ही चुका था। पिता मिले तो भी जैसे तैसे। पाप के अथाह दलदल में एक बार पड़ते फिर प्रतिपल नीचे ही नीचे [illegible] चला गया। जीवन २ में कई बार ठोकरें भी लगने पर प्रत्येक भी [illegible] की चोट से कर ही क्या लेना था। Eat drink and be merry ; बस यही व्यापार था और यही जीवन का मुख्य उद्देश्य था। पुरुषार्थी होते हुए भी क्या किया [illegible] भी हुआ जा सकता इसका मुन्शीराम के मन ख्याल तक भी न आया था। परिणामतः कितनी ही बार विद्यार्थी-जीवन में अनुत्तीर्णता के कटु फलों का आस्वादन किया। यह समय तो अमृत का था। "यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता। एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्" इस श्लोक का अक्षर २ मुन्शीराम के जीवन पर चरितार्थ हो रहा था। यौवन था ही, पिता जी की ओर से खर्च के लिये कोई बन्धन न था। कोतवाल का लड़का अपने को प्रभु मानता ही था। बस इन बातों से जितनी अविवेकता उत्पन्न होनी चाहिये थी

यह वृत्ति मात्रा में विद्यमान थी। शराब रखना उनकी भी आवश्यकता जोरों पर थी। मारकाट आदि चलाने का शौक था। शराब पीने की आदत सीमा को लाँघ रही थी। कभी पढ़ाई का शौक, कभी कविता की धुन, कभी उपन्यास पढ़ने की तरफ और कभी आवारगी। मनोविनोद की कोई भी सामग्री मुन्शीराम के लिए उतनी ही आवश्यक थी जितना वायु और भोजन। ऐसी अवस्था में मुन्शीराम का विद्यार्थी-जीवन कितना अव्यवस्थित रहा होगा इसका पाठकगण स्वयं ही अनुमान कर सकते हैं। इस जीवन में बहुत से उतार चढ़ाव हुवे। यह बात तो मुन्शीराम के स्वभाव में ही थी कि जो काम करना पेट भर कर करना। बुद्धि के खुले घोड़े दौड़ाये तो ईश्वर तक को नकार दे दिया आचरणों की बाग ढीली की तो कभी आमोद होकर लिये। मुन्शीराम के हृदय में यदि कुछ भक्ति की टिमटिमाती ज्वाला जल रही थी तो वह भी विश्वनाथ के मन्दिर में रीवां-नरेश की रानी की घटना से एकदम बुझ गई। "क्या विश्वनाथ जी को भी आज धन की मजबूत बेड़ियों ने अपने पंजे में जकड़ लिया है जो एक रानी के मन्दिर में चले आने पर और सब की पूजा के द्वार पर ताला लग गया है" इस प्रकार की विचार-वीचियों से मुन्शीराम का हृदय सागर क्षुब्ध हो गया। इस घटना ने मुन्शीराम को नास्तिक बनाने में जलते ईंधन में घी छिड़कने का कार्य किया। उस दिन विश्वनाथ के मन्दिर की गली से भक्तवर-मुंशीराम नास्तिकवर-मुंशीराम बन कर निकला। जो मुंशीराम देवताओं की पूजा से पूर्व मुंह में अन्न जल भी न डालता था वह अब इनका कट्टर विरोधी हो गया।

भक्ति-प्रधान कुल में केवल अपने सब से छोटे पुत्र को ही नास्तिक देखकर पिता नानकचन्द जी मन ही मन दुःखी हुआ करते थे। साथ ही मुन्शीराम को इन सांसारिक उलझनों में उलझा देखकर वे उसके आगामी जीवन के विषय में बहुत चिन्तित थे। इन्होंने अपने लड़के को सम्भालने की बहुत कोशिश की पर बे-लगाम का घोड़ा अब कैसे पकड़ में आता। घुड़की धमकी, शिक्षाओं और उपदेश सभी और विनय का उस पर कुछ भी असर न हुआ। बात को इस कान सुनना और उस कान उड़ा देना उसका नित्य का कर्म था। बहुत प्रयत्न करने पर भी जब हार निराश होगये तो उनके मुख से यही वाक्य निकलता— "वह समय एक विचित्र जादू और चमत्कार का होगा जिस क्षणिक दिवस में मेरे इस लाडले पुत्र के जीवन में पूर्णरूपेण आमूलाग्र भी परिवर्तन की झलक नज़र आवेगी।"

पिता का, अपने भक्त नानकचन्द के हृदय की आवाज़ मुन्शीराम ने सुनी और मुन्शीराम एक ऐसे जादूगर के फन्दे में फंसा कि उससे छुटकारा पाना असम्भव हो गया। वह जादूगर कोई नया न था। १४ वर्ष पूर्व जब मुन्शीराम के पिता नानकचन्द जी काशी में नौकर थे उस समय यही साधु "आस्तिक-जादूगर" के नाम से विख्यात था। काशी में रहते हुए, इस भय से कि कहीं मेरा लड़का इस जादूगर के फन्दे में न फस जाय, माता मुन्शीराम को घर से बाहिर भी न निकलने देती थी। माता जी को क्या मालूम था कि उनके देहान्त के पीछे उनका प्यारा बच्चा इसी जादूगर के उपदेश से प्रभावित होकर उसका अनुयायी हो जायगा।

उसी जादूगर ने अपने विचित्र जादू से भक्तों को फन्दे में फांसा कर १८३८ में भी बरेली में भी अपना जाल फैलाने की सोची। मुन्शीराम के पिता नानकचन्द भी तब बरेली में ही कोतवाल थे। एक दिन घर आते ही पिता ने पुत्र को बुलाया और कहा कि - "बेटा मुंशीराम! एक दण्डी सन्यासी आये हैं बड़े विद्वान और योगीराज हैं। उनकी वक्तृता सुन कर तुम्हारे संशय अवश्य ही दूर हो जायेंगे। कल मेरे साथ चलना।" मुन्शीराम ने उत्तर में तो हाँ कर दिया पर दिल में यह भाव चक्कर काटता रहा कि केवल संस्कृत जानने वाला साधु क्या अक्ल की बात करेगा। पिता जी से चलने का आग्रह तो कर ही लिया था सोचा चलो आज भी अन्य साधुओं की भाँति इस साधु की भी बक-बक सुन आएंगे। बेगम के बाग में व्याख्यान का प्रबन्ध था। निश्चित समय पर पिता जी के साथ मुन्शीराम भी वहाँ पहुँच गये। परन्तु इस साधु की तो दिव्यमूर्ति में ही कोई अजीब जादू था कि उसके दर्शन करते ही जादूगर की छाप एकदम हृदय पर अंकित हो गई। अभी १० मिनट की वक्तृता नहीं सुनी थी कि हृदय में विचारों की उथल-पुथल मच गई। उस दिन के व्याख्यान ने मुन्शीराम पर मोहिनी मन्त्र का सा जाल बिछा दिया। वह दिन किसी प्रकार बीता। अगले दिन से मुंशीराम प्रतिदिन व्याख्यान में उपस्थित होने लगे। मुन्शीराम को ईश्वर और वेद तो एक ढकोसला मात्र प्रतीत होता था, अपने नास्तिक पन के अभिमान की कोई सीमा न थी। एक दिन

छ बाबा के सम्मुख ईश्वर के अस्तित्व पर आक्षेप कर ही डाले। पांच मिनट के उत्तर में ही मुन्शीराम ऐसा घिर गया कि जिह्वा पर मुहर लग गई। जो कुछ सोच कर आया था सब हवा हो गया। दूसरी बार तैयारी की, तीसरी बार साहस किया पर मुंशीराम की तर्कना को हर बार पछाड़ मिली। जादूगर चला गया पर अपना जादू का जाल बिछा गया। इस जाल में फंसे पक्षियों में से मुंशीराम भी एक थे। बस यहां से उन का प्रवाह उलट पड़ा। उनकी हृदय की बढ़ी हुई उमड़ टकरा कर उलटी ओर को चली। नास्तिक मुंशीराम केवल आस्तिक ही नहीं बना पर बाबा के जादू ने आचरण में भी क्रान्ति उत्पन्न कर दी। अपने लाड़ले पुत्र में यह आश्चर्य-पूर्ण परिवर्तन होता देख कर पिता नानकचन्द जी की खुशी का पारावार न था। अपने लड़के के सम्पूर्ण परिवर्तन का श्रेय उसी जादूगर को ही देते थे जिस के विचित्र जादू से उन के लड़के की विचार-धाराओं का पश्चिम की तरफ़ बहता हुआ प्रवाह एक दम पूर्व की ओर बह चला। पाठकगण! इस विचित्र जादू के जादूगर आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ही हैं।

श्रद्धानन्द जी

ब्र. सत्यभूषण जी

महर्षि स्वामी दयानन्द जी के निर्वाण के पश्चात् आर्यसमाज के जितने कतिपय नेता हुए हैं; उन में अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का नाम सब से मुख्य है। वे एक सच्चे देशभक्त, लोक-प्रिय जाति-सेवक और प्रसिद्ध समाज-सुधारक थे। उन्होंने अपने जीवन में बड़ा भारी काम किया। उन का कार्य-क्षेत्र केवल आर्यसमाज तक ही सीमित न था। वे देश के एक सर्वमान्य राष्ट्रीय नेता थे। धार्मिक अथवा राजनैतिक सब प्रकार के आन्दोलनों में उन्होंने भाग लिया। समय समय पर देश में जितनी क्रान्तियां हुईं या सुधार की लहरें उठीं; कर्तव्य का ख्याल कर के स्वामी जी ने सब में पूर्ण सहयोग दिया और प्रशंसनीय कार्य किया। उन में विशेषता यह थी कि वे सब स्थानों पर अग्रणी बन कर रहते थे। उन्नति के किसी भी काम में वे पीछे नहीं रहे। आर्यसमाज का प्रचार आरम्भ किया तो सब सुखों को लात मार कर उसी में दिन रात एक कर दिया। आत्म-सुधार में लगे तो आदर्श सन्यासी बन कर दिखला दिया। पाश्चात्य सभ्यता के प्रवाह को रोकने के लिये तथा प्राचीन भारतीय आदर्शों को पुनः स्थापित करने के लिये शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति मचा दी। गुरुकुल जैसी आदर्श राष्ट्रीय संस्था को खोल कर असम्भव कहे जाने वाले कार्य को सम्भव कर दिखाया। हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य के दिनों में हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के हृदय-सम्राट् तथा बिना छत्र के राजा बन गये। भारतीय-स्वातन्त्र्य-संग्राम में उतरे तो महात्मा गान्धी और जवाहरलाल जैसे नेताओं की श्रेणी में गिने जाने लगे। वे एक उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ थे। जब हिन्दु-संगठन की आवश्यकता समझी तो शुद्धि और दलितोद्धार का नया प्रोग्राम आरम्भ कर दिया। उन का प्रत्येक कार्य वीरता और उत्साह से भरा हुआ था। वे त्याग और तपस्या की मूर्ति थे। निर्भयता उन में कूट कूट कर भरी थी। वे एक निर्भीक सन्यासी, वीर कर्मयोगी और प्रचण्ड योद्धा थे। उन जैसा कर्तव्यपरायण सैनिक दूसरा देखने में नहीं आया। ऋषि दयानन्द उन के मार्ग दर्शक और सेनापति थे।

अपने सेनापति की आज्ञा का उन्होंने अक्षरशः पालन किया। जिस बात का ऋषि दयानन्द अपने उपदेशों व ग्रन्थों में निर्देश कर गये थे; उसे उन्होंने कार्य में परिणत करने की चेष्टा की। जिस काम को उन्होंने उन्नति के लिये आवश्यक और अच्छा समझा, उस में प्राण-पण से जुट गये। वीर योद्धा की तरह उन्होंने जीवन-संग्राम में सब विपत्तियों का बहादुरी से मुकाबला किया। उन्होंने जिस कार्य को अच्छा समझ कर एक बार आरम्भ कर दिया उसे अन्त में पूरा करके ही छोड़ा। महापुरुषों की यह सब से बड़ी निशानी है। 'प्रारब्धमुत्तमजनाः न परित्यजन्ति।'

जीवन क्या है? यह एक अत्यन्त गहन प्रश्न है। इस का विचार प्रत्येक के लिये आवश्यक है। इस का उत्तर सब मनुष्य अपनी २ रुचि के अनुसार अलग अलग दे सकते हैं। यह सब के लिये विचारणीय प्रश्न है। जीवन एक विषम समस्या है; जिस का हल आसानी से नहीं हो सकता। जीवन का विश्लेषण करने से पता लगता है कि यह विषमताओं का क्रीड़ा क्षेत्र है; सुखों और दुःखों का अपूर्व सम्मिश्रण है। इस में कभी उतराव आता है और कभी चढ़ाव, कभी विषाद और कभी आनन्द। वास्तव में विषमता का नाम ही जीवन है। सच्चा जीना इसी को कहते हैं। जहां विषमता नहीं: परिवर्तन नहीं, वहाँ आनन्द कहाँ। जिस ने विपत्तियां नहीं झेलीं, वह जीवन के आनन्द को क्या भोगेगा! जो लोग संसार में आकर सदा अविचल रूप से एक ही कार्य में लगे रहते हैं; उन्हें संसार कैसे पहचान सकता है! जो लोग स्वार्थ-साधन को ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य समझ कर दिनरात उदर पोषण में लगे रहते हैं और संसार का कुछ भला नहीं करते, संसार उन्हें क्यों याद करेगा! जिन के जीवन में ~~जीवन में~~ क्रियाशीलता नहीं और परोपकार की लालसा नहीं उन का जीना जीना ही नहीं कहा जा सकता। कोई विरले ही महापुरुष होते हैं जो जीवन के असली रहस्य को समझ कर उस के अनुसार आचरण करते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द ऐसे ही लोकोत्तर महापुरुषों में से एक थे। उन का सारा जीवन विषमताओं और आश्चर्यमयी घटनाओं से परिपूर्ण है। उन्होंने अपने जीवन को सार्थक करके संसार के सामने आदर्श उपस्थित किया। मनुष्य साधारण अवस्था से किस प्रकार ऊंचा हो सकता है; इस बात

और कहा कि मुझे प्यास लगी है। स्वामी ने सेवक से कहा पानी पिला दो। सेवक ने पानी दिया। मगर उसकी प्यास पानी से कहाँ बुझ सकती थी उसको तो खून की प्यास थी। उसने स्वामी के विशाल वक्षःस्थल पर प्रहार किये। स्वामी की इहलीला समाप्त होगयी। स्वामी ने अपने खून से कटोरे को भर अपने कातिल की प्यास बुझाई। यह थी आदर्श मृत्यु!

आज दिल्ली में एक शहीद सन्यासी नहीं नहीं बादशाह की अर्थी का जलूस निकल रहा है। लाखों की संख्या में लोग जमा हैं। आज दिल्ली की सड़कें फूलों से बिछी हुई हैं। बॅण्ड बाज़ों से उस दिवंगत आत्मा के मृत-देह का स्वागत किया जा रहा है। बीच में सजे हुए, फूलों से बिछे हुए एक विमान पर उसी सन्यासी का मृत देह जो अब भी ओजस्वी मालूम होता है, पड़ा है। उस की छाती खुली हुई है, मानो अब भी बन्दूकों को आह्वान कर रही है। मकानों की छतें मनुष्यों से भरी हुई हैं। स्त्रियें छतों पर से पुष्प बरसा रही हैं। कहीं २ पैसे और रुपये भी बरसाये जा रहे हैं। यह शानदार बादशाह का जलूस दिल्ली के इतिहास में अनुपम ही था। दिल्ली के पुराने बादशाह भी अपनी कबरों में से उचक २ कर इस बादशाह के जलूस को ईर्ष्यालु आंखों से देख रहे थे। देवता भी आकाश में विमानों से पुष्पवर्षा कर रहे थे। यह देवताओं का विमान इस सन्यासी के स्वागत के लिये नीचे उतरा और सन्यासी को इस में बिठाकर ऊपर उड़गया। लोग देखते ही रहगये और आज भी उस स्थान पर लोग उस सन्यासी के देह को देवताओं से विमान पर लेजाये जाते हुए देख रहे हैं। स्वर्ग में इन्द्र का दरबार लगता है; सब देवता एकत्रित होते हैं। बारी २से हरेक उठकर उस सन्यासी का स्वागत करते हैं। इन्द्र अपने आसन को छोड़कर उस सन्यासी को उस पर बिठाता है। हर्षध्वनि होती है। नृशंस कातिल अब्दुल रशीद आता है और ज़ार ज़ार रोता है और स्वामी के चरणों में गिर जाता है। रोते २ उसकी घिग्घी बन्ध जाती है। स्वामी कहता है- 'पुत्र, इस में तेरा दोष नहीं।' यह कह कर क्षमा प्रदान करता है। सारी सभा में सन्नाटा छा जाता है। कुछ देर बाद हर्षध्वनि

होती है। आज क्षमाशीलता के सामने हिंसक शक्तियां नीची हो जाती हैं। यह सन्यासी कौन! यह देवसभा का सभापति कौन! यह स्वामी श्रद्धानन्द है। यही हमारा नायक है।

ओहो। वह क्षण धन्य था! कितना महत्व का था! एक क्षण में विचारों के प्रवाह ने क्या से क्या रूप ले लिया होगा! सत्कार के लिये पुष्प माला बनाने के लिये फूल तोड़ने वाले को क्षमा करने वाले उस अहिंसक साधु के सामने वह पिशाच रिवाल्वर लिये खड़ा होगा तो क्या उस समय स्वामी जी उस को देखकर क्रोधित हुए होंगे? नहीं, नहीं, कभी नहीं। संसार के सब से महान पुरुष महात्मा गान्धी जो उन को अपना बड़ा भाई समझते थे, लिखते हैं कि - 'यदि मैं कुछ भी स्वामीजी को जानता हूं तो कह सकता हूं कि प्राण छोड़ते समय स्वामी जी के मन में हत्यारे के विषय में यही विचार आया होगा कि परमेश्वर उस नादान को क्षमा करें।' सचमुच उस क्षमामूर्ति के दिल में यही भाव था। वह तो अपने निर्बल शरीर द्वारा भी देश, धर्म और जाति की सेवा करने के लिये तय्यार था। उस को तो अपने हाथ से बोये हुए वृक्ष को रुधिर से सींचने का यह अवसर मिला था। स्वामी जी जिस शान से इस दुनिया में आये थे और रहे थे, उस से बढ़कर सौगुनी शान से यहां से गये थे। सचमुच उस क्षण की कल्पना अद्भुत थी। वह क्षण संसार के इतिहास में नवीन ज्योति पैदा कर गया। ओ क्षण! तू धन्य! धन्य!! धन्य!!!

श्रद्धानन्द.

ब्र॰ ओम्प्र[illegible] जी

आजकल इस कुलभूमि में 'श्रद्धानन्द सप्ताह' मनाया जा रहा है। इन्हीं दिनों में ही हमारे कुलपिता ने अमरत्व प्राप्त किया था। उस की पुण्य-स्मृति में ही यह सब कुछ हो रहा है। जगह २ चहलपहल नज़र आती है। सब के मुखों पर अगर कुछ है तो वह है श्रद्धानन्द। यह जो कुछ भी विभूति नज़र आ रही है वह सब उसी कुलपिता के तप का परिणाम है। उस ने हमारे प्रति जो उपकार किए वे किसी से छिपे नहीं हैं। वह एक तपस्वी और सच्चा संन्यासी था, गुरुकुल का आदर्श आचार्य था और था वास्तविक कुलपिता। उस ने देश, जाति और समाज का जो कल्याण किया सो तो किया ही, लेकिन उस ने हमारे

सामने जो आदर्श स्थापित किया और हमारे लिये जो अ-
नेकों विपत्तियां झेली, उन्हें हमारे दिल ही जानते हैं।
कहां तक उन के यश का बखान किया जाय?
मेरे पास ऐसे शब्द नहीं हैं और ना ही ऐसी योग्यता
है जिस से मैं उन का यशोगान कर सकूँ। खुद
गुरुकुल ही उन का कीर्तिस्तम्भ है। जब तक यह
गुरुकुल इस भूमि पर विद्यमान है तब तक उस कुल-
पिता का नाम अमर रहेगा।

अब यह हमारा कर्तव्य हो जाता है
कि हम सब भी इस सुअवसर को हाथ से मौका
न जाने दें और ऐसे मौके पर उस स्वर्गीय कुलपिता
के चरणों में कुछ न कुछ श्रद्धाञ्जलि चढ़ावें जिस
से अमर कुलपिता की आत्मा को स्वर्ग में भी
शान्ति मिले।

इस अवसर पर उस पिता की पुण्य-
स्मृति में हम दो काम करते हैं। एक तो कुलपताका
का अभिवादन - और कि हम, कुलमाता और कुल-

पिता के प्रति आदर व प्रेम के भावों से भर देता है और हम भावुक हो कर अपने अमर कुलपिता के पवित्र चरणों श्रद्धाञ्जलि चढ़ाते हैं। दूसरे इस समारोह में जो प्रमुख और महत्वपूर्ण कार्य होता है वह है 'अखिल भारत वर्षीय श्रद्धानन्द हॉकी टूर्नामेंट। यह साधारण या स्थानीय-या टूर्नामेंट नहीं है। इस में बाकायदा एक चांदी का चल विजयोपहार (शील्ड) भी रखा हुआ है। मुझे यह कहते हुए बड़ी प्रसन्नता होती है कि यह शील्ड लगातार चार या पांच वर्षों से गुरुकुल टीम ही जीत रही है, पर यह देख कर और भी ज्यादा [redacted] खुशी होती है कि यह टूर्नामेंट प्रति वर्ष उन्नति और उन्नति ही करता जा रहा है।

सुनते हैं पिछले कई सालों की अपेक्षा इस साल टूर्नामेंट बहुत ही अच्छा हो रहा है। अब की बार टीमें भी बहुत बढ़िया आई हैं। उनमें Edward High School मुजफ्फरनगर की टीम विशेष उल्लेखनीय है। इस में तीन चार खिलाड़ी तो बहुत ही बढ़िया खेलते हैं। इन की game बहुत ही fair है। इन के ~~Scoring और passing~~ उत्तम

हुए passing को देख मारे खुशी के दिल भी उछलने लगता है। खेल देखते ही बनती है।

बहुत सम्भवतः गुरुकुल A. final में इसी से ही भिड़ेगी। इन की खेल देख कर यह कहना बहुत मुश्किल ही मालूम होता है कि गुरुकुल टीम इसे चलता कर ही देगी। अतः अब की बार मामला डांवाडोल सा जान पड़ता है। पता नहीं विजयश्री किस के गले में जयमाला डालेगी।

मैं यहां पर यह कह देना आवश्यक समझता हूँ कि यह टूर्नामैंट जितना ज्यादा उन्नत होगा उतना ही हम कुलपिता के नाम को अमर कर सकेंगे। इस टूर्नामैंट की उन्नति ही उस के अमरत्व का चिन्ह है।

अन्त में मुझे यह कहते हुए हार्दिक प्रसन्नता होती है कि यद्यपि प्रतिनिधि सभा प.-जाब ने हमें पूरे समारोह का अवकाश न देकर कुलपिता के प्रति श्रद्धा का अच्छा परिचय दिया है तथापि विद्यार्थियों ने समारोह को सफल बनाने में कोई कसर न उठा रखी है।



श्रद्धानंद

ब्र. नरदेव जी १० वी गु. कु. सूपा

संवत् १८१३ में भारत के एक छोटे से गांव में एक विभूति पैदा होती है। यह विभूति एक धर्मनिष्ठ क्षत्रिय घराने में जन्म लेकर बचपन में ही आत्मपोषित तेजस्विता, कर्त्तव्यपरायणता तथा निर्भीकता के रंग में, ऐसी रंगी गई थी, कि जिससे संसार में कोई विरली ही आत्मा रंगी हुई होगी।

उस देह-धारी विभूति का नाम मुंशीराम था। उस का शैशव-काल एक आदर्श काल था। [illegible] के सहवास ने उनके जीवन को तपस्यामय बना दिया था, तीन साल की [illegible] में भी दिन में [illegible] रात को [illegible] से स्नान करना एक साधारण बात थी नहीं [illegible] उपासना करती पिता की ओर से डांट पड़ी, [illegible] उस डांट को सहन न कर सकी, वह गले में फांसी लगा लेती है, पिता उस [illegible] एक चादर [illegible] कर देते हैं; मुंशीराम एक बार माता की गोद में छिप जाते हैं। इस तरह समय व्यतीत होते २ उनकी उपनयन विधि होजाती है और शिक्षा लेने में [illegible] रहते हैं। शिक्षा का [illegible]

[illegible] लिखतें लेकर भटकते थे प्रतिलिपि प्रातः ही किया करते थे इस कारण भूनार स्कूलों में पढ़ाई करने भी नहीं पाई। इस तरह मन लगाकर पढ़ना, नहीं नहीं लड़ते, बस तुलसीदास उनमें बढ़ निकले। केवल यहांतक पहुंची कि कवितायें प्रकाशित होगये। विद्यालय के शिक्षक भी [illegible]। पिताजी के पूछने पर जीवनमें प्रथम बार भावात्मक भी बोल उठे। परन्तु पिताके समझाने बुझाने पर पुनः पढ़ाई में लग गये।

तुलसीदास जी ने फिर स्कूल में, प्रातः पाठकी करनी थी। [illegible] की मामा विधिवत है, ताश खेलें में ऐसा युक्त हो गया, फिर पढ़ाई का मन नहीं कुछ मौज भाति का दौर-दौरा बढ़ गया। स्कूल जाने में [illegible] करते गये [illegible] नहीं बढ़े पढ़ी नहीं। [illegible], [illegible] का [illegible], [illegible] पड़ गये जीवन की सामान्यता [illegible]। इसी तरह दिन बढ़ने लगे; फिर एक [illegible] पहुंचे। [illegible] होगई। [illegible] होगई और [illegible]। [illegible] मन जीवन में [illegible] और [illegible] कि [illegible] जीवन की [illegible] जिसमें तुलसीदास [illegible] होगया। [illegible] मन [illegible] में दीक्षा [illegible] गये। [illegible] कि [illegible] नहीं। इसी समय [illegible] एक [illegible] मिला जिसने तुलसीदास जी

की हाड़ मांस का पुतला सदा के लिये बदल दिया। यह परिवर्तन अद्भुत था, काया पलट हो गई, नष्ट कर या। ज्ञान की ज्योति ज्यों ज्यों बढ़ती गई, धर्म के धर्म के फूल खिलते गये। अहिंसा, दया, त्याग, सत्य, क्षमा, धैर्य के अंकुर विकसित होने लगे। नौकरी में काम लेना उनकी आत्मा के सर्वथा प्रतिकूल था। बिना दाम लिये दुकानों से कोई वस्तु ले लेता था तो वह चपरासी के पांवों में पड़ हाथ जोड़ [illegible] तक को कह देता था कि दाम न दोगे तो दुकान उठवा दूंगा। आखिर किस्सा अफसर तक पहुंचा, पर वह निर्भीक आत्मा वैसे ही डटा रहा। इस घटना का यह प्रभाव हुआ कि उन्होंने नौकरी पर लात मारी और वकालत की परीक्षा की तैयारी करने लगे। भाग्य ने उनको फिर जोर पकड़ा। भगवान के अद्भुत चरित्रों में कि उन्हीं दिनों स्वामी दयानन्द एक नवीन ज्योति [illegible] के दर्शन होगये। हृदय का अंधकार उस ज्योति को देखते ही न जाने कहां विलीन होगया। उज्ज्वल ज्योति से आंखें खुल गईं। बस उसी दिन से उस के जीवन का [illegible] होगया। आखिर [illegible] दिव्यमूर्ति ऋषि दयानन्द के सामने माथा झुक गया। नया जीवन होगया। सांसारिक वासनाओं के द्वार किले [illegible] होगये। [illegible] की तरह अब सम्पूर्ण [illegible] हाथ में आगया। भक्ति, विचार और [illegible] अपना अमूल्य दान किया और सदा के लिये अमर होगया।

अखाड़ा भवन का सामना करते हुये श्याम कुटी, पर्णकुटी, शांतिनिकेतन का रंगमंच। अब देखो परीक्षा का समय था, इनके नायक कसौटी पर रक्खे-गये। जिन्होंने भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व किया, परन्तु इन कुछ प्रतियोगियों से ऊपर उठी भारती क्या उनसे बच सकी! कभी नहीं। अतीत भारत नेतृत्व कर दिया, और गम्भीर आकाश ने कहा कि तुमने तुम्हें उचित मार्ग से एक भी आशा नहीं चाहिये। फिर यह दृढ़ता देखकर दंग रह गये। तो मन में सोचने लगे कि " कुतोऽपि परसाम्य स्थाणिकरणस्य मन: " अरे! जिस धरातल पर मुनियों का मन भी डांवांडोल होजाता है, उस पर इनके ठहराव कैसे लात मारती। फिर तो आगे कुछ कहने को साहस नहीं होता, कांपते हाथ निश्चल होजाते हैं और धड़कते होंठ एक दम बन्द होजाते हैं। बेचैनी सी चलती तीर ऐसा मालूम देने लगी, मानो किसी ने सींची हो। सारा शरीर निश्चल और ठंडा जड़वत् होगया मानो लकवा मार-गया हो।

सब झगड़े छोड़कर अब इनके नायक ने नवालय में पैर रक्खा। पैर रखते ही एक दम चमक उठे, नवालय के जैसे का जौहर दीखा रहा इसी दौर दौरे में उन्होंने साम्प्रदायिक क्षेत्र में पदार्पण किया। इनका वैदिक के पश्चात् भी आधार साथ थे, किन्तु यहां से भी अपने उद्देश्य की सिद्धि न देख निराश होगये, तब उनके मनों में उसी दिन दृष्टि

दयानन्द का एक गम्भीर नाद सुनाई दिया कि बिना ब्रह्मचर्य प्रथा के भारत की शिक्षा खोखली है। यह बात हृदय में रहने लगी कि वकालत और सब झगड़ों पर लात मारकर उन्हें गुरुकुल की धुन सवार हुई। हरद्वार के जंगलों में जो हाथियों की चिंघाड़ और शेरों की गर्जना से गूंज रहे थे एक संन्यासी और [illegible] भगवान के भरोसे बैठ गये। फकीर की झोली भरगई, भिक्षा मिल गई, भक्तों ने अपने जिगर के टुकड़े भी उनके हवाले कर दिये। वह जंगल में मंगल हो गया। जो जंगल हाथियों कि चिंघाड़ों और शेरों की गर्जना से गूंज रहे थे। वो जंगल वेद की ध्वनि से गूंजने लगे। फकीर ने अपने बच्चे, अपना तन मन तथा सर्वस्व इस यज्ञ पर न्योछावर कर दिया। इस त्याग का वह फल हुआ, जिसे आज दुनिया देखकर दंग होती है। सैंकड़ों लहरों के थपेड़े झेल कर - हजारों हजारों विपत्तियों का सामना करके भी आज उस फकीर की कीर्तिध्वजा 32 साल के बाद भी वहीं उसी भव्य गौरव से अपना सिर ऊंचा उठाये वैसी ही खड़ी है जैसे आजसे 32 साल पूर्व थी। सैंकड़ों शिक्षण महाविद्यालय खड़े हुये और खतम हो गये, किन्तु गुरुकुल आज भी अपने पिता की कीर्तिध्वजा के साथ गौरवसे मस्तक उठाये हुये है। जिन दिनों गुरुकुल की एक अलग स्वतन्त्र [illegible] की, ब्रह्मचर्य की प्रथा पर लोग हंस दिया करते थे। उन दिनों में महात्मा मुन्शीराम की हस्ती थी, जिसने दुनिया को पलट कर दिखा दिया। दुनिया ने उसका लोहा माना, और आज तक नहीं अनेक गुरुकुल उसके पद चिन्हों पर चल रहे हैं। हमारे नायक ने अपने तन मन धन से जैसी गुरुकुल की सेवा की; वैसी-वैसी किसीने नहीं और न कोई कर सकेगा। गुरुकुल कोरा शिक्षण संस्थाओं में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करता यह उसकी ही देन थी।

गुरुकुल को उच्चशिखर तक पहुंचा कर, धर्म की आज्ञानुसार उन्होंने वान-प्रस्थाश्रम से संन्यासाश्रम में प्रवेश करने का निश्चय किया। तीनों वह पुकारने स्वामीजी का नाम पाट कर अपने विशाल कार्यों के लिए बुलाते हुए, यह वह फकीरी बाना धारण कर लिया जिसकी दीक्षा अपने प्रथम वस्त्र गुरु दिव्य मूर्ति दयानन्द से मन ही मन में ग्रहण कर चुके थे। आज तक जिसने ऐसे आराम में जिन्दगी गुजारी, जो गुरुकुलों का प्राण और सर्वोत्तम अधिकारी था; उसे आज अपने देश और धर्म की सेवा के लिये भिखारी बनकर फकीरी बाना पहनने में उतनी बेहद खुशी की अंदर मन में उमंग होगी। बस आजसे हमारा नेता म. मुंशीराम से श्रद्धानन्द बन गया।

यहाँ श्रद्धानन्द जिधर निकल गया, उधर ही सबसे आगे दिखाई दिया। पापी डायर की गोलियों और मशीनगनों से रक्षित अमृतसर में कांग्रेस का स्वागताध्यक्ष होकर कांग्रेस का अधिवेशन इतनी सफलता और निश्चिन्तता से सम्पन्न करा देना या इसी जवांमर्द की हिम्मत थी। जेल और गुरु के बाग के सिक्खों के सत्याग्रह के समय दूसरों के लिये अपने को कुर्बान कर देना यह गुण स्वामीजी में ही था। सं. १९७५ के आरम्भ में रौलट एक्ट के सम्बन्ध में देहली के घंटाघर के आगे निर्भीकता का जो रूप देखा वह नहीं कभी न दिखा और न दिखाई देगा। संगीनों को दधीचि की छाती ने झुका दिया!

शुद्धि संगठन का काम हाथ में लिया तो उसे भी शिखर तक पहुंचा दिया। कमज़ोर हाथों से तन और मन बढ़ी तो पुन- दिल्ली का आश्रय लिया। चारपाई पर पड़े। भारी गम में देश और धर्म की सेवा के विचारों में मग्न श्रद्धानन्द के पास एक कातिल हत्यारा आया। दुपहर का समय था, घर में निःसहायता का राज्य था। हत्यारे ने पानी मांगा

ज्योंही पती वीर लोटकर आया कि ज्योंही दनादन तीन गोलियों से धराशायी किया। पापी के हाथ में बल ही कहाँ था, एक ही धक्के में गिरा दिया गया। हत्यारा तोप कोठरी में बन्द हुआ, शहीद स्वामी प्रभु की गोद में जा बैठे। मुझे दीन के दीवानों ने समझा था कि श्रद्धानन्द का अन्त हो गया; परन्तु शहीद का खून कभी व्यर्थ जाता नहीं। श्रद्धानन्द सबसे अमर बन गया!

प्यारे भाइयो! आज कठिन रोने का समय नहीं; कर्तव्यपालन का है। हमारे कुलपिता का मार्ग अति कठिन है। इस अति कठिन मार्ग पर चलने का भार उसने हमारे इन कमजोर कन्धों पर डाला है। जब हमारे वीर धुरन्धर कुलपिता ने अकेले ही सारे देश में क्रान्ति मचा दी तो क्या हम सब कुल आर्य मिलकर देश में पवित्र वैदिक धर्म की ज्योति नहीं जला सकते? क्यों नहीं? अपने दिलों में जैसा जोश भरें, पिताजी के सार गर्भित उपदेश को याद करें:-

हुरेशातानालातं नोस्मात्मव सात्येत
आलोक दयालवो मन्यु आलोक रिपुरात्मनः।
मन्युरात्मनस्य साक्ष्य येनात्मेनात्मनाजितः
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥

आपकी भुजाओं में शक्ति सम्पादन करो, सफलता जरूर मिलेगी, अतः भाइयो! आज से ही उछलती हुई नवीन उमंगों के साथ हम सब मिलकर परमात्मा से प्रार्थना करें कि प्रभो! हमें बल दो ताकि हम निर्भय आत्मा शहीद पिताजी के पद चिह्नों पर चलते हुए, वैदिक धर्म के रंग में रंग कर अपने देश, जाति तथा धर्म पर बलिदान होने के लिये कमर कस कर इस संसार की रणस्थली में कूद पड़ें तथा उसमें

इसमें नूतन शक्ति का संचार करें। आज का दिन कठिन का है नवयुवकों का नहीं। इसलिये "तन्मेमनः शिवसङ्कल्पमस्तु" की उपासना करते हुये और 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत" के आदेश का पालन करते हुये, प्रभु भगवान से प्रार्थना करनी चाहिये कि वह हमें जीवन की जननी जन्म भूमि तथा प्राणों से भी प्यारे धर्म के लिये जीवन न्यौछावर करने का बल दे।

कुल पिता की आत्मा हमें बार २ पुकार कर कह रही है कि पुत्रो! अमर बनो देश और धर्म पर कुर्बान हो जाओ। धर्म युद्ध की जलती ज्वालाओं में कूद पड़ो, दूसरों के दुखों में अपने को खोया करो। और अपने सनातन ओ३म् के झंडे को नीचे न झुकने दो, तभी तुम्हारा इस कुल में रहना सार्थक होगा। प्रभु [illegible] बल दे।

ओम् शरण



... ब्र॰ धर्मवीर जी १० न (सुप्त)

संवत् १८१३ फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी के दिन परमात्मा ने भारत को एक दिव्य सितारा दिया था जो आज के ८ वर्ष हुवे अस्त हो गया। पर उस का नश्वर शरीर ही अस्त होगया है; उस की वह दिव्य चमक तो अभी तक भारत के नर-नारियों में भरी हुई है। क्या कारण है कि उस की चमक अब तक भी है और अन्त तक रहेगी। मेरे मन में उस के प्रति ईर्षा उठती है कि वह क्यों आज भी चमकता है। हां पर केवल ईर्षा से काम न चलेगा। वह क्यों प्रकाशित हुवा और उस ने किस तरह दुनिया को प्रकाशित किया, इस पर आज हम सब भाई विचार करने को एकत्र हुवे हैं। और उस के जीवन से कुछ शिक्षा लेकर हम भी प्रकाशित होने का प्रयत्न करेंगे।

हमारा कुल पिता प्राचीन संस्कृति का बड़ा उपासक था। देश जब मुसलमानों के अत्याचारों से दब चुका

था, चारों ओर से अज्ञान रूपी अन्धकार छा गया था, साधारण जनता स्व-संस्कृति को भूल चुकी थी, तभी दुर्भाग्य से या सुभाग्य से हमारे गौराङ्ग-प्रभुओं का आगमन हुआ। उन्हों ने हमारे देश को शिक्षित बनाना चाहा पर वह क्या शिक्षा थी। देश को डुबाने वाली मदिरा थी, जिस को पीकर हमारे आचार विचार हमारी सभ्यता हमारी संस्कृति हमारा शौर्य आदि सब नष्ट हो गया। यहां तक कि हम अपने को उनके साम्राज्य में रहने में अभिमान मानने लगे। हम अंग्रेज़ी बोलने में अपने को सभ्य बताने लगे। इस प्रकार के दीन तथा अकर्मण्यता के विचारों को धक्का पहुंचाने वाली एक सौम्य तथा भव्य मूर्ति भारत में अवतरी, जिस से के पुरुषार्थ से हम दूर या समीप होते हुवे भी भाई २ तथा कृष्ण-सुदामा का आदर्श बताने वाले प्राचीन सभ्यता का महत्व दिखाने वाले हुवे। वह भव्य-मूर्ति हमारे शहीद कुल पिता 'वीर सन्यासी' श्रद्धानन्द की थी। उस ने जगह २ गुरुकुल खोले जिस के द्वारा उस ने प्राचीन संस्कृति को पुनः जागृत कर दिया। वर्णाश्रम तथा आश्रम-व्यवस्था को स्थापित किया। ऊंच नीच के भेदभाव भुलाये।

हिन्दी को सब से उच्च-[redacted] स्थान (राष्ट्र भाषा रूप में) देकर श्री विनायक शास्त्री आदियों को चकित किया और फिर से इस पुण्य-भूमि को वेद-ज्ञान से पवित्र कर दिया।

यही नहीं साथ २ हमारे श्रद्धेय-श्रद्धानन्द ने और भी कितने काम कर दिखाये। चारों ओर से मुल्ला-मौलवी तथा पादरी, हिन्दुओं को ग्रस रहे थे। उन के विरुद्ध उस ने शुद्धि तथा [redacted] अछूतोद्धार का दरवाज़ा खोल दिया और सैंकड़ों हिन्दुवों को विधर्मी होने से बचाया। और आखिर जब उस तैय्यार किये हुवे वृक्ष के लिये रक्त रूपी पानी की आवश्यकता हुई तब उस वीर सन्यासी ने उसे अपने लोहू से सींचा और उस पर अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया।

हमारे कुल पिता ने परोपकार को अपना कर्तव्य ही बना लिया था। वह तो यही समझता था कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ही ठीक है। जहां पर कुछ आपत्ति आती वहां पर सहायता के लिये वह दण्डधारी मूर्ति प्रथम रहती थी। अमृतसर की कांग्रेस में वह मूर्ति प्रथम थी। जलियांवाले

नगर के पीड़ितों की प्रथम सहायता करने वाला वही संन्यासी था। वह सिक्खों का नेता होकर चला। मुसलमानों का पथ-प्रदर्शक बना। हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य का अग्रणी था। और हिन्दु तथा आर्य भाइयों का तो प्राण ही था। कई आर्य भाई तथा सनातनी भाइयों ने उसके काम में विघ्न डाला। विधर्मियों ने मृत्यु की धमकियां दीं। पर वह किसी से न डरा, डर तो उसे किसी का था ही नहीं। वह यमराज से तो दिल्ली के घंटाघर के सामने खेल में विजय पा ही चुका था। विजय पाते क्यों नहीं, उसने 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि' तथा 'न जायते म्रियते वा कदाचित्' के पाठ को तो अपने जीवन में ही उतारा था। इन सब गुणों को देखकर हितोपदेश का एक श्लोक याद आता है —:

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा,
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥

सच मुच ये सब गुण उस कुलपिता ने प्रकृति से ही प्राप्त किये थे। वह गुणों का भण्डार था। सच मुच ही वह भारत का दिव्य सितारा था।

বিবিধ

कविता-कुञ्ज

दुनिया

दुख सुख का क्या मेल बना है
यह जीवन क्या खेल बना है ?
जन्म मरण क्या हैं दो पाले—
जो भी पार करे जय पाले। —
चाह भरी मस्तानी तानें
आह भरे एकाकी गाने
दाह भरे कुछ वीर तराने
यह सब कुछ क्या है क्या जाने ? —
करुण हास्य बीभत्स भयानक
प्रतिपल नव नव दृश्य अचानक
क्या है कलरव, क्या नीरवता ?
क्या विक्षोभ विषमता समता ?—
किसका रोना, किसका गाना ?
क्या नूतन, क्या भला पुराना—
अपना क्या है ? क्या बेगाना —
किसका आना किसका जाना ?—
चिन्तन का है दिया बुझा सा
है रहस्य यह बे सुलझा सा
यत्न विवश हो, ज्यों ज्यों करते
जाता अधिक उलझा सा।—
× × ×—३—× × ×

[redacted]
सबके अपने कुछ अनुभव हैं।
कहो पुराने या अभिनव हैं।
उन ही से विश्लेषण जग का
जीवन मे करते मानव हैं।—
दुख ही मे सुख की परिणति है
स्थिरता मे ही सच्ची गति है।
कलपाने में ही कलपाना,
छिपा हुआ रोने में गाना।—
कड़वी घूंटें मधु बनती हैं,
लौह शृङ्खला मृदु बनती हैं।
स्वप्नों की बातें भी बहुधा
सत्य निकल जाती है सहसा।—
अमित व्यथा में खुशी भरी सी
कसकों में आशा बिखरी सी।
विष के प्याले में अमृत है—
भरा हुआ अप्रिय में हित है।—
दूर दूर से अपना कर मन,
कटु अनुभव पाता है सुन्दर !—
मृदु गुलाब का फूल कँटीली
झाड़ी मे रहता जीवन भर।—

किसी हृदय को कुछ प्रियकर है
वही दूसरे को प्रतिकूल।
अलबेली रुचियां हैं जग में
कोई अहित वही अनुकूल।—
वही कुमुद जो खिल उठती है
देख सोम की एक झलक,
मुरझा जाती, देख दिवाकर
की आभा को मूंद पलक।—

पंकज विषम सरोवर वासी
साथी भयकारी जलचर।
खिला देखकर जिसे सौम्य भी-
चन्द्र गुप्त होता छिपकर।—
उसी कमल पर रीझा रहता
रवि आँसू भरकर अनमोल,
आ जाते हैं आलिंगन कर
देते हैं उसका दिल खोल

दोनों के मुख पर सहसा ही
लज्जा की हलकी लाली—
आती देख उषा मुसकाती
दुनिया होती मतवाली।—
विविध दृश्य दुनिया के प्रतिपल
देख २ कर लेकर रस—
फिर भी एक पहेली सी है
यह संसार है या नीरस

फूल

क्या कहूँ फूल! तू क्या है?
इक रूप रुचिरता का है। १.
सुन्दरता जग में उतरी
बन रूप रंग की पुतली।
पत्तों के हलके गहने
सिर से पाँवों तक पहने। २
यह रंग अछूता तेरा,
औ फिर काँटों में डेरा।
है. पायन्दाज बिछाई -
पग मोड़ दृष्टि शरमाई। ३
क्या शैया है बाणों की
कर विजय वीरता लेटी।
है प्रताप इन पत्तों में
या भीष्म घिरा अपनों में। ४.
-या योगी पर्णकुटी में
-है मस्त फटी कमली में
-है तेज खेलता छविपर
— या लाल बाल रवि तम हर। ५.
या वनमाला अलबेली,
बगिया में खड़ी अकेली—
पत्तों से झाँक रही है।
क्या पाप नाशिनी श्री है। ६
है आभा किसी सती की
बन और युग युग चमकी
क्या कहूँ, फूल! तू क्या है!
किन रंगों में डूबा है। ७.
मैं किस रंगत को पूछूँ!
पग पग पर मुग्ध हुआ हूँ
हरबार मुझे चौंकाते
रवि शशि तारा भी हैं। ८.

(९)

मैं भुनगा प्रेम पुजारी
बालागरम अलख चिंगारी।
हे फूल! मुझे तू क्या क्या!
साधन प्रिय की पूजा का।

(१०)

तू भरा रूप का प्याला,
मैं प्रेम पगा मतवाला
तू पीकर झूम रहा है

. ... ???

क्या जाने किस पूर्व जन्म के, युग युग के सञ्चित अङ्गार (संस्कार)
जाग उठे ये आज हृदय में, मचा रहे हैं हाहाकार।
× × × × × × ×

मध्य निशा के अन्धकार में किसी निबिड़ वट तरु के बीच,
— कहीं स्तब्धता भङ्ग न हो जाये भरसक सन्नाटा खींच —
दम साधे कर रही चौकसी फैली सब शाखायें हों,
सोते शुक-शावक शिशुओं की मानो प्यारी धायें हों।
इतने में अज्ञात भाव से 'खड़ खड़' वहाँ हो उठे शोर
और उचक कर चिड़ियों के कातर बच्चे बाहर की ओर —
ज्यों देखें; झट महाकाल की छाया सी कोई तसवीर,
दीखे उनपर हाथ डालती, हो जायें वे अवश अधीर। —
× × × × × × × ×

उसी भाँति कुछ आज हृदय पर छाया यह सहसा अवसाद।
करुणा का कम्पन नस नस में, बेहोशी, भीषण उन्माद॥
× × × × × × × ×

एक बार तो जी करता है मुक्तकण्ठ मैं रो दूँ आज,
जगती को चञ्चल करदूँ पर अपने को मैं खो दूँ आज।
कारण? कारण नहीं जानता, क्यों ऐसी उठती है चाह,
क्यों बैठा २ यों ही बस, भरने मैं लगता हूँ आह।
इतना ही बस मुझे पता है, है पीड़ा कुछ है कम्पन,
कहीं अकेलापन पा जाऊं, आजावे कुछ हलकापन।
डरता हूँ पर, जबतक ढूँढ़ूँ मैं कोई निर्जन एकान्त
इसी बीच ही कहीं हृदय की कसक न हो जाये कुछ शान्त।
रोक थाम से क्या होगा? क्यों व्यग्र हो रही हो पलको?
किस दुविधा में पड़े आँसुओ रुके वहाँ? छलको, छलको।
बरबस बरस पड़ो स्वागत है, हे मेरे हिय के उद्गार
फूट पड़ो उमड़े मेघों से फूटे ज्यों जल की बौछार।
× × × × × × ×

क्या जाने .... ???

परिवर्तन

सुख दुख का भाग्य विधाता-
है क्षण भर का परिवर्तन।
सखे! एक इशारे पर उसके
बन लघु करता जग नर्तन।
× × × × ×

जब लम्बी जीवन सरिता का -
वेग रुका सा जाता है,
बन सेतु उस पल परिवर्तन ही
आगे को ढुलकाता है।

सान्त्वित करता शक्ति स्रोत की -
पुण्यमयी वह धारा है,
कितनों ही को परिवर्तन ने
लाखों बार उबारा है।
× × × × ×

मेरे सुन्दर जीवन का वह —
एक बना ध्रुव तारा है;
हे परिवर्तन। कहो कौनसा
तुझे समर्पण प्यारा है?॥

माँ —

× ×

देखता हूं स्वप्न एक,
स्नेहमयी बाँहे मेरी —
माँ की मुझे छाती तक
खींचे लिये जाती हैं।
छलक रहा है प्यार,
अमृत सा प्यालियों में,
स्नेह बरसाती आँखें —
आज मिची जाती हैं।
देखना न स्वप्नभङ्ग
होवे यह मातु! मेरा,
कामना अकेली बस
यही रही जाती है।
कोमल करों से तुम
मेरी सहलाना देह,
तेरी पुण्य गोद में जो —
आज लेटी जाती है।

श्री 'सुकुमार' आयुर्वेदालङ्कार

समुद्र

यह अनन्त निस्तल अधीरता,
व्याकुलता का पारावार!!
क्या है? क्यो है? दौड़ा जाता,
कौन? किसलिये? किसके द्वार?
× × × × × × × × ×

ऊँची नीची लहरें उठती
पटक रही सिर, किसकी खोज?
झाग उगलतीं, दाँत पीसतीं,
क्या यह मतवालो की मौज? ×
झंझा कबकी मार रही पर
फड़क रहा संतप्त हृदय।
व्योम व्यापिनी पीड़ा तुझको—
आ थामेगा कौन सदय? ×
कौतुक है, नाटक है, क्या है?
सूत्रधार लीला का कौन?
हा! असीम अविरत कोलाहल!
साध लिया क्यों तूने मौन? ×
यही समस्या मन की मेरे,
यही हृदय का मेरे सार।
अन्तहीन निस्तल अधीरता!
व्याकुलता का पारावार। ×

श्री प्रो. चमूपति जी M.A.

एकाकी के प्रति

गाओ गाओ अपनी तान।
प्यासा अपनी प्यास बुझाता
दे दे करके कान। — गा·
* नयन चषक अश्रु बरसाता
भर भर के यह दान।
पीड़ा-भार भरे आँसू में
झिलमिल हो आना भगवान्।
गायक! भूल क्षमा कर देना,
मुझको जान अजान। --
हृदय धधकती आग जली का
कर दो तुम अवसान। -
सरल सलोने बाल-हृदय में,
रमकर हे मृदु बाल सखे! ---
मीठी नीरव स्वर लहरी का,
तन दे तान वितान। ---
आकर फिर हो भाग चले तुम,
रज्जु प्रेम की काट चले तुम।
ना छोड़ूँगा तुमसा पाकर
कितने छलिया हो भगवान्।
× × × × × × ×
पकड़ पकड़
रह जाता हूँ मैं।
तुमसा सखा
न पाता हूँ मैं।

मानस रूपी थाल सजाकर
प्रेम-अश्रु का [illegible] दीप जलाकर
दिया तुम्हारा तुम्हें चढ़ाता,
भोग करो भगवान्। -
महा प्रलय की कालनिशा में,
आग छलकती पूर्व दिशा में
दीवाना बनकर आजाना
करने को मधु पान। -
तारागण की उजियाली में
कृष्ण घनों की अंधियाली में,
ढूँढा था मैंने जा २ कर
नहीं मिला तुमसा उपमान। -
हृदय सुमन का विनिमय कर ले
तू मैं या मैं तू हो जावे,
एक हृदय होकर फिर गावें -
गायक मङ्गल गान। --
मैं तुम में या तुम मुझ में हो,
सखे! बताओ तुम किसमें हो?
इसमें उस में सब में हूँ मैं —
बाहर भीतर एक समान।
× × × × × ×
सखा मिलन की
डोरी कसते —
हो गए
अन्तर्धान!!

श्री आनन्द स्वरूप जी
'पुष्प वर्ण'

---

* छलकाता.

क्षमादान

मित्र!

(१)

प्रथम – क्षमा।
द्वितीय –
कहा क्या? क्षमा याचना
यह कैसा अंधकार।
मै तो सदा तुम्हारा ही हूँ
पर तुम करते अत्याचार।
आखिर कब तक सहे चलूँगा
रो रो कर दुत्कार। —
प्रथम – आज क्षमा दो मुझे मित्र तुम,
और बना लो हिय का हार।—

(२.)

द्वितीय – आह!
नहीं सह सका मेरा दिल तो
रोकर उठा पुकार।
तुम मेरे ही सदा रहे हो
पर यह वज्र प्रहार
करके सुख तूने सोचा था
प्रेम भाव को मार। —
प्रथम – टूक टूक दिल हुआ हमारा
चोटें खा दो चार।—

(३)

द्वितीय → इच्छा है अब तुझे लगा लूँ
हियसे अपने हे प्रियमित्र!
मुझे सर्वदा सावधान कर
हिय में भरना भाव पवित्र,
यह ही आशा तुमसे अबतक
रखता आया हूँ मैं मित्र!
आज खिंच गया अहा! तुम्हारा
हियमें प्रेमभावमय चित्र॥

श्री विद्यानिधि जी आयुर्वेदालंकार

आकस्मिक हंसी -

मेरी हंसी फूट पड़ी।
फूट पड़ी फिर झलक पडी इन अँखियन के द्वारे। मेरी--
जोर लगाया बहुतेरा, समझाया मनवाया भी,
लोभ दिखाया तरह २ का फुसलाया हर्षाया भी,
जूँ तक रेंग न पाई मानों रूप रङ्ग दिखलाया भी —
सीस दिया आखिर चरणों में हाथ जोड़ तरसाया भी।
इतनी निठुर भई। मेरी
× × × × ×

लोग खड़े है सुनलेंगे तो घबराएंगे क्या समझेंगे,
पागल तो ऐसे ही लाखों फिरते हैं सब कह देंगे।
क्या अच्छा है कहदेंगे ये निधड़क होके सारे
पी मदिरा के प्याले काले कभी नहीं ये हारे।
रुक जा देर भई। मेरी ---
× × × × ×

क्या जानें ये भोले भाले चमक दमक में रहने वाले
नयनो की इस तुच्छ छटा पर होने वाले मतवाले।
क्या होता है सूर्योदय में पूर्वदिशा जब होती लाल
और कुछ नहीं केवल- विधि ने खींच लिया है अपना पाल।
सुन लेंगे अब कई। मेरी ..

श्री ब्र. सोमदेव जी 'स्वादना'

पथिक

पथिक चलो घर भूलो अपना सारे सकट को भूलो।
अभी यहाँ फिर अभी वहाँ तुम शूलो पर पग धर झूलो॥
चले चलो परदेसी बनबन उपवन या वनवास करो,
सारा ही बन बने तुम्हारा इन मे ही उल्लास करो॥
सुबह सूर्य के आलिङ्गन को, नींद तुम्हारी जा भागे।
पीछे पीठ फेर मत देखो, चले चलो आगे आगे॥
धूप तेज हो जाये तेरा तेज उसे नीचा देखे।
आगे तेरे विमल मार्ग हो; बाधक दल पीछा देखे।
तप्त भूमि पर जब जब तेरे चरण पड़ें गिर गिर जावें,
तब तब स्वेद बिन्दु झर जाये तेरे चरण कमल न्हावें॥
वृक्ष तुम्हारी सेवा को ही, मार्ग तुम्हारे खड़े हुए।
या बाधा का रूप बदलकर तेरे पैरो पर पड़े हुए॥
शूल फूल हो, महादेव सर्वत्र ग्रीष्म सताप हरे।
मरुस्थली मे जटाजूट से गगा की बौछार करे॥
मित्र तुम्हारे चिर परिचित ये वृक्ष मनोहर दान भरे।
फूलो की डाली भर लाएँ, तुझे भेट सम्मान करे॥

श्री ब्र बलदत्त गौ

लेख

ब्रह्मचारियों को प्रणाम

स्वामी जी के मन्तव्य.

(१) भोजन का समय दो बार ही ठीक है। प्रातःकाल ९-१० के बीच में सायंकाल ६-८ बजे के बीच में।

(२) भोजन सदा सुपच हो बहुत मसालों वाला न हो। कड़वा भोजन हो परन्तु विरुद्ध भोजन न हो।

(३) भोजन स्वभाव के ऋतु के और देश के अनुकूल होना चाहिये।

(४) भोजन के पदार्थ जो शुद्ध हों, सके सम कि..... में से चुनें।

(५) आसन व्यायाम और प्राणायाम प्रातः सायं नियमपूर्वक करने चाहियें।

(६) शुद्ध वायु में प्रातः सायं एक दो घण्टा भ्रमण स्वास्थ्य के लिए व्यायाम से भी अधिक हितकर होता है।

(७) भोजन के पश्चात खुली चलती वायु में टहलना हितकर है।

(८) भोजन इतना खाना चाहिये कि पेट में बोझ प्रतीत न हो।

(९) अन्न की मादकता के कारण यदि भोजन के पश्चात कुछ आलस्य प्रतीत हो तो १५-२० मिनट लेटकर सावधान हो जाना ठीक है।

(१०) रात्रि को ९ बजे से ५ बजे तक निद्रा लेना मर्यादा है।

(११) रात्रि को सोने से ३ घण्टा पूर्व भोजन कर चुकना चाहिये।

(१२) भोजन के पश्चात् और सोने से पूर्व मूत्र-त्याग करना चाहिये।

(१३) शीतकाल में स्नान के पश्चात् आसन व व्यायाम और ग्रीष्म में स्नान से पूर्व करना अधिक अच्छा है।

(१४) स्नान करते समय पानी से भरे खुरदरे कपड़े से शिखा से नख तक शरीर को रगड़ लेना चाहिये।

(१५) वस्त्र धारण से पूर्व शरीर को अच्छी तरह सुखा लो।

(१६) व्यायाम के पश्चात् भी शरीर को ऊपर से नीचे अच्छी तरह मलो।

(१७) प्रातःसायं सन्ध्या के समय ईश्वर चिन्तन के साथ शारीरिक और मानसिक पूर्ण विश्राम का अनुभव करो।

(१८) भोजन निश्चिन्त होकर करो जल्दी में नहीं।

(१९) भोजन के पश्चात् भी कम से कम ३ घण्टे तक कार्य करना न होना चाहिए। एक घण्टे के बाद साधारण काम किया जा सकता है।

(२०) भोजन के पश्चात् प्रसन्नता पूर्वक दिल बहलाव कुछ नहीं सायंकाल को तैरना या मैदान में खेल कूद करना अच्छा है।

(२१) कपड़ा स्वच्छ खुले जिन में दुर्गन्ध न आती हो ऐसे पहिनने चाहियें।

(२२) २४ घण्टे के पश्चात् पहिना हुआ कपड़ा पानी में धोकर धूप और हवा में सुखा कर पहिनना चाहिये।

(२३) अपने बिस्तर के कपड़े प्रतिदिन धूप में सुखाने उचित हैं। कपड़े पर से धूप हटने से पहिले ही उन्हें लपेट कर बिस्तर बनाकर रख देना चाहिये।

(२४) जिन को स्वप्न दोष होने की सम्भावना हो उनको तो अवश्य ही परन्तु औरों को भी अधरात्रि में उठकर लघुशंका करके फिर सोना चाहिये।

(२५) रात को नींद खुलने पर लेटे रहना ठीक नहीं। कुछ टहल कर फिर बैठ कर गायत्री मन्त्र का जाप मन में ही गिनते हुए आंखें बन्द करके करे। १०० आवृत्ति से पहिले ही नींद आजायेगी।

(२६) कब्ज़ रहता हो तो प्रातःकाल उठने के पश्चात् एक गिलास उबला हुआ गर्म पानी पीकर कम से कम एक मील घूमने चले जाओ। शौच साफ हो जायेगा।

(26) हृदय का ध्यान रखते हुए रात्रि को वाम-पार्श्व से सोना अच्छा है। इससे भोजन ठीक जीर्ण होता है। रात को सर्दी से कुछ बचाव रहता है।

(२८) सोने के पश्चात् फुर्ती से उठो, सुस्ती से नहीं, ऐसा न हो कि समझो कि तुम्हारे शरीर पर तुम्हारा अधिकार नहीं है। भोजन व्यायाम और निद्रा के नियमों को ठीक करके अधिकार प्राप्त करो।

(२९) किसी बात से खिजो नहीं। इससे निर्बलता सूचित होती है।

(३०) किसी बात का उत्तर चाहे आता हो या न आता हो, यदि उसका उत्तर न देने से तुम्हारी कुछ हानि नहीं है तो उत्तर मत दो। ऐसा करने से विवादों से बच जाओगे। और शक्ति का अपव्यय नहीं होगा।

(३१) भोजन से पूर्व भी स्नान कर लेना चाहिये। स्नान न किया जा सके कुछ देर खुली वायु में टहलकर और मुख हाथ पाँव धोकर भोजन करना चाहिये।

(३२) रात्रि को सोने से पहिले ऋतु के अनुसार ठण्डे या गर्म पानी से मुख हाथ पाँव धोकर शुद्ध सद्भाव के साथ सो जाना चाहिये।

(३३) स्नान से पूर्व सूखे कपड़े से खुली वायु में शरीर को मलना चाहिये।

(३४) मांस तम्बाकू शराब भंग गांजा चरस अफीम कोकेन आदि का सेवन करना अनुचित है।

(३५) भोजन पात्र इतने स्वच्छ होने चाहियें कि उनमें अन्न की गन्ध भी न आती हो।

(३६) पुस्तक के पन्ने पलटते समय थूक लगा कर न पलटने चाहियें।

(३७) खाली बैठे मुख में अंगुली लेखनी या तिनका आदि कुछ डाले रखना अनुचित है।

(३८) बिस्तर गुदगुदा न होना चाहिये। स्वप्न दोष जिन्हें हो उन्हें इस ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

(३९) आवश्यकता को छोड़ कर केवल मनोरञ्जनार्थ चाय कॉफी चाय कोको लैमोनेड आदि पदार्थों का सेवन छोड़ देना चाहिये।

(४०) सुगन्धि के लिये इतर आदि तीव्र सुगन्धियों का सेवन व फूल तोड़ २ कर सूंघते रहना ठीक नहीं।

पत्रोत्तर में

प्रिय ब्रह्मचारी, ...

नमस्ते

तुम ने मुझ से जप के विषय में — — — —

कोई विद्यार्थी जब अपने पाठ को स्मरण करता है तब उसे बारबार दोहराता है। कोई कार्यकर्ता जब किसी नवीन कार्य में प्रवृत्त होता है तब कार्य करने के सङ्कल्प को बारबार मन में दोहराता है। बार बार दोहराने से कार्य करने के लिये मन में दृढ़ता आ जाती है। कार्य करने से पहले मन में विद्यमान रहने वाले संकल्प को बार बार दोहराने से, निकल जाती है। संसार में प्रत्येक कर्म किसी न किसी वृत्ति पर अवलम्बित है। वृत्ति का जैसा स्वरूप होता है वैसा कर्म का स्वरूप होता है। वृत्ति में जितना बल होता है कर्म उतना ही पक्का होता है। वृत्ति में विकृति आने से कर्म में विकृति आ जाती है। विशेष फल की प्राप्ति के लिये विशेष कर्म की आवश्यकता है। किसी भी कर्म से किसी भी फल की प्राप्ति

हो जावे यह सम्भव नहीं है। कर्म में विकृति का प्रतिबन्ध करने के लिये वृत्ति में विकृति का प्रतिबन्ध करना आवश्यक होता है। वृत्ति में विकृति का प्रतिबन्ध हो जावे अर्थात् वृत्ति स्थिर और सतत बनी रहे, इसके लिये उपयुक्त साधन का अवलम्बन करना आवश्यक होता है। यह उपयुक्त साधन जप है। फर्श बनाते समय फर्शवाले एक एक स्थान को लकड़ी से खूब पीसते हैं। लगातार चोट मारने से वह स्थान पक्का हो जाता है। स्थान पक्का हो जाने के अनन्तर फिर चोट मारने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसी प्रकार चित्त की भूमि को पक्का करने के लिये जप के द्वारा उस पर निरन्तर चोट लगाई जाती है। बाह्य संसार में तो चोट लगाने वाला और जिस पर चोट लगाई जाए दोनों पृथक् २ हैं परन्तु आत्मिक संसार में ये दोनों एक हैं। चित्त पर चोट लगती है और चित्त ही लगाता है। चित्त के भीतर वृत्ति की आवृत्ति होती है और यह आवृत्ति चित्त में ही होती है। चित्त का स्वरूप-विशेष ही वृत्ति है अतः चित्त से पृथक् नहीं र है। चित्त में वृत्ति का आवर्तन ही जप का स्वरूप है।

~~चित्त वृत्ति~~

चित्तवृत्ति के साथ शब्द का घनिष्ठ सं-
बन्ध है। विविध प्रकार का शब्द विविध प्रकार की चित्त-
वृत्ति को उत्पन्न करता है। जो शब्द जिस प्रकार की चित्त
वृत्ति को उत्पन्न करता है, उस शब्द के निरन्तर उच्चारण
करने से वह वृत्ति स्थिर हो जाती है। वृत्ति की स्थिरता
का नाम ही चित्त की स्थिरता है। शब्दानुसारी चित्तवृत्ति
होने का कारण यह है कि शब्द-घटक अक्षरों के उच्चारण
में स्थान, प्रयत्न और काल का भेद पड़ता है। अक्षरो-
च्चारण में स्थान, प्रयत्न और काल का भेद प्राण की गति में
भेद डालता है। प्राण की गति में भेद का कारण प्राणगत-
बल का भेद कारण है। अक्षरों के स्थान, प्रयत्न और का-
ल के भेद से प्राण के बल में भेद पड़ जाता है। प्राण के बल
में भेद पड़ने से चित्तवृत्ति बदल जाती है। प्राण, लघु
और गम्भीर होते चित्तवृत्ति में चञ्चलता मन्द पड़ जाती
है। चञ्चलता को शान्त करने के लिये प्राणों को बलवान्
तथा गम्भीर करना आवश्यक है। वर्णमाला में अनेक
अक्षर अल्पप्राण हैं और अनेक महाप्राण हैं। अल्पप्राण
अक्षर प्राणों को गम्भीर तथा बलवान् नहीं बनाते, महा-

प्राण अक्षर प्राणों को गम्भीर और बलवान् बनाते हैं। इस
लिये महाप्राण अक्षर चित्तवृत्ति को शान्त करते हैं। अक्षरों
का उच्चारण करते हुए पता लगाना चाहिये कि किस किस
स्थान पर कितने २ प्रयत्न से किस २ प्रकार का बल-प्राण
में प्रगट होता है। यदि मनुष्य किसी शब्द को स्थूल या सूक्ष्म
उच्चारण करते हुए पता लगावे कि प्राण में किस २ मात्रा
में बल किस २ स्थान में उत्पन्न होता है और उस की उत्प-
त्ति क्रम क्या है तो फिर उस २ स्थान में प्राण के साथ मन
को उसी २ क्रम से टिकाने से अर्थात् केवल ध्यान
करने से भी अक्षरोच्चारण के बिना ही जप हो जाता है
और इस जप से चित्तवृत्ति में वही प्रभाव उत्पन्न होता है जो
जो शब्द के आधार पर जप करने से होता है। अक्षरोच्चा-
रण के बिना ध्यानमूलक जप से अधिक प्रभाव होता है
और अन्य प्रकार से कम होता है। अक्षर के बिना जप
करने में चित्तवृत्ति का अनन्तिमाभ जप होता है। जैसी
जैसी चित्तवृत्ति करनी होती है वैसे २ भावों की आवृ-
त्ति करते जाते हैं। शब्द ध्वनि के साथ शब्द के भाव को
भी जागृत करते जावें तो शाब्दिक जप की अपेक्षा अ-
धिक लाभ होता है।

गायत्री मन्त्र के अक्षर क्रमः महत्त्वपूर्ण हैं। उन के उच्चारण से या केवल उन की ध्वनि से प्राणों में बल आ कर चित्त वृत्ति विशेष शान्त होती है। अन्य मन्त्र जो इसी प्रकार भारी अक्षर वाले हैं उन से भी वही लाभ उठाया जा सकता है जो गायत्री मन्त्र से। विरोध चित्त वृत्ति के लिये विशेष मन्त्र हैं, सब वृत्तियों के लिए सब मन्त्र नहीं हो सकते, क्योंकि मन्त्रों में अक्षर-योजना विविध प्रकार की है।

~~मेघ~~ मेघ-गर्जना में स्निग्ध, गम्भीर निर्घोष के स्वरूप ~~मेघ गर्जना~~ को स्मरण कर के बार बार मन में आवृत्ति करने से प्राण में भी स्निग्धता और गम्भीरता आती है और इसी के साथ चित्त वृत्ति उस मानसिक निर्घोष में लीन हो कर शान्त हो जाती है। ओ३म् का जप ~~मेघ~~ मेघ के स्निग्ध, गम्भीर निर्घोष की अनुभूति में ही किया जाता है, तभी ओ३म् का जप विशेष फल वाला होता है अन्यथा नहीं।

"हंस हंस इति मन्त्रोऽयं जीवो जपति सर्वदा।"

ऐसा कहा है। "हंसारोहः वाह्यमति सूक्ष्मात-प्रतिशोधनः।"

इस प्रकार मनुष्य हम् की आवाज़ में श्वास बाहर फेंकता है और स: की आवाज़ में श्वास अन्दर कर लेता है। श्वास प्रश्वास में बल देने से इस प्रकार के आवाज़ों की कल्पना की गई है। परन्तु उस श्वास-प्रश्वास पर से बल हटा लिया जाय तो श्वास-प्रश्वास में कोमलता आ जाती है स: + हम् = सोऽहम् = स् + ओ+ह् अम् = ओऽम्। श्वास-प्रश्वास की कोमलता में ओम् का जप रह जाता है। इस लिये ओम् का जप करने के लिये, ओम् शब्दोच्चारण-पूर्वक जप छोड़ कर, केवल कोमल श्वास-प्रश्वास में ध्यान से स्निग्धता और गम्भीरता ~~पैदा कर के~~ उपस्थित करके ओम् का स्वाभाविक जप करना चाहिये यह ही उत्तम है। इस स्वाभाविक जप में करना कुछ नहीं पड़ता केवल मन में स्निग्ध और गम्भीर ध्वनि को स्मरण करके प्राण को भी वैसा बनाना होता है। श्वास में गम्भीरता आरम्भ होती है और निश्वास में समाप्त होती है। इस जप से मनुष्य का चित्त एकाग्र और शान्त हो जाता है। उसे आनन्द अनुभव होता है। इस जप के स्वाभाविक होने से अन्य किसी जप के

करने का प्रश्न ही नहीं रहता।

प्रातः, सायम् और अन्य ऐसे समय जिस समय मन अशान्त हो इस प्रकार जप किया जा सकता है। भोजन करने के पश्चात् इतनी देर तक यह क्रिया न करनी चाहिये जितनी देर तक पेट हलका न हो जावे।

शान्त, सुहावने, निर्जन, निभृत स्थान में, जिस में हवा मन्द २ बह रही हो और जल का किनारा हो, यह जप विशेष लाभ प्रद है। अन्य ऐसे स्थान में भी जिस में विक्षेप न हो जप किया जा सकता है।

सिद्धासन या पद्मासन से बैठ कर जप करना अधिक उत्तम है। अन्य आसन से भी जप किया जा सकता है जिस से बाधा न मालूम होती हो। जप करते समय श्वास के उतार चढ़ाव के साथ २ मन की गति पृष्ठवंश गत सुषुम्ना नाड़ी में शिरः पश्चास्थि (occipital bone) के सन्मुख से गुदमण्डल तक करनी चाहिए। श्वास लेने में नीचे से ऊपर को शिरः पश्चास्थि के सन्मुख तक और श्वास छोड़ने में ऊपर से नीचे को गुदमण्डल तक मन की गति होती है। श्वास

प्रश्वास मन्द होने लगता है तो मन की गति श्वास प्रश्वासों की पिछली ठोकर के साथ २ कण्ठ से हृदय तक रह जाती है। श्वास प्रश्वास की गति बहुत मन्द पड़ने पर मन हृदय में टिकने लगता है। अन्त में श्वास-प्रश्वास में गति शान्त होती है और मन हृदय में रुकता है और हृदय के अन्दर घुसता है।

इस प्रकार जप के रास्ते से भी मनुष्य चित्त की एकाग्र और निरुद्ध भूमिकाओं को प्राप्त कर लेता है।

प्रस्तुत
देवराज विद्यावाचस्पति

अस्पृश्यता.

ब॰ च॰ गुप्त जी

आज जिस समस्या को आपके सम्मुख मैं उपस्थित करने लगा हूँ यह कुछ चन्द लोगों की समस्या नहीं है किन्तु वह ५ करोड़ लोगों की समस्या है। राष्ट्र के बड़े २ नेता उस पर गम्भीर विचार करने में संलग्न हैं। मैं भी भारत के सातवें हिस्से के प्रति अपने विचारों का इजहार करने लगा हूँ।

आज सम्पूर्ण भारत में दलित भाइयों को दला जाता है। बाजारों में वे वस्तु-विक्रय नहीं कर सकते, सार्वजनिक विद्यालयों समाभवनों और सड़कों पर उन्हें चलने की इजाजत नहीं, मनुष्य की वे सड़कें जिन पर कुत्ते फिर सकते हैं गधे घूम सकते हैं किन्तु हिन्दु जाति के बेटे उन पर पाँव नहीं धर सकते। हाल की घटना है १९३० में इन्दिरा में रामगढ़ नामक ग्राम में कलूर जाति पर प्रस्ताव पास करती है कि अछूत लोग आभूषण व धारण न करें, घुटने से नीचे कपड़ा न पहनें, बाल न कटायें, छाता न लगावें, केवल मिट्टी के ही बर्तन प्रयोग में लावें, विवाह पर बाजा न बजावें, घोड़े पर न

रहें, वे अपने बच्चों को शिक्षा न दें पशुपालन कर ही वे जीवन व्यतीत करें। इन प्रस्तावों को अमल में न लाने पर उनके झोंपड़ों में आग लगा दी गई, फसलें नष्ट कर दी गईं, और सम्पत्ति लूट ली गई। इतना ही नहीं १६. २२ और २४ दिसम्बर को "Hindu" की सुविधा को उभार देखिये एक unseeable जाति का रोमांचकारी दृश्य हमारी आँखों के सामने से गुजरता है। मद्रास में क लोगों के कपड़े धोने को निकलती है और पौ फटने फिर अपनी गुफाओं में घुस जाती है। सी प्रकार की एक और जाति गल में गुमनाम लटकाये

सामने आती है। इसी प्रकार पूना के पादरी और जीसस के मलावार मन्दिर में ईसाई और मुसलमान जा मन्दिर को अपवित्र कर सकते हैं किन्तु हरिजन लोग सत्याग्रह करने पर भी घुस नहीं पाते हैं वे मनुष्य होते हुए भी मानवीयता के अधिकारों से वंचित रखे जाते हैं और मनुष्य होते हुए पशुओं से भी बदतर व्यवहार उनके साथ किया जाता है। कौन ऐसा व्यक्ति है यह सुन कर जिसका रोम रोम जल नहीं जाता और आँखों में खून नहीं उतरता। यह है सभ्यता की समस्या। कौन इस समस्या को दूर कर सकता है और किस प्रकार अछूतपन के कलङ्क को मिटाया जा सकता है।

कहा जा सकता है कि लोगों में प्रचार करें परन्तु यदि यह समस्या १ लाख लोगों की होती तो इसको हल किया जा सकता था। एक नहीं - दस रामचन्द्र अछूतों को छाती लगाते हुए आँखों में धूल उलझाकर लाठियों की मार मर जाते। श्रद्धानन्द पैदा हो सकते थे जो दलित भाइयों के दुखे दिलों की दवा बाँटते २, विरोधियों को खून के कटोरे पिलाकर अमर-शहीदों में नाम लिखा जाते। और गान्धी जन्म ले सकते थे जो अस्पृश्योद्धार को जीवन का चरम-लक्ष्य बना कर आमरण उपवासों से अपने जीवन की बाजी लगा देते। किन्तु यह समस्या हजारों की नहीं लाखों की नहीं, करोड़ों की है। एक करोड़ नहीं, दो भी नहीं, ५ करोड़ की है। Hindus के अतिरिक्त अन्य कौन इस महत्वपूर्ण कार्य को करने में समर्थ है?

हिन्दू उन्हें अपनाना नहीं चाहते, मुसलमानों से वे नफरत करते हैं; ईसाइयत उन्हें स्वीकार नहीं, और सिक्ख अपने में नहीं रख सकते। ऐसी अवस्था में अछूत-समस्या Community की समस्या न रह कर Nationality की समस्या बन गई है। यह धार्मिक प्रश्न न रह कर राष्ट्रीयता का सवाल हो चुका है। कहा जाता है कि अछूत स्वयं उन्नत हों, या हिन्दू समाज स्वयं उन्हें अपनाले

सरकार को हस्तक्षेप करने की क्या ज़रूरत है? मैं पूछता हूं, आज भी हिन्दुस्तान में ऐसी जातियां मौजूद हैं जो व्यभिचार को अपने धर्म का अङ्ग समझ बैठी हैं, क्या आप उन्हें व्यभिचार करने की आज्ञा देंगे? ऐसे भी लोग मौजूद हैं जो नरबलि और बालवध को धर्म समझने में महत्व अनुभव करते हैं। क्या आप नरबलि अर्पित करेंगे और क्या आप भोले भाले बच्चों के सर कटा कर मूर्तियों पर अर्पित करने को उद्यत होंगे? रहने दीजिये इस समस्या को यहीं पर, इतिहास की ओर देखिये, History क्या बतलाती है? क्या सतीप्रथा भारत में बन्द हो सकती थी यदि सरकार का सहयोग न होता? क्या बालवध और नरवध का मानो किस्सा दुनिया से मिट सकता था यदि सरकार की दिलचस्पी न होती? और क्या शारदा ऐक्ट का स्वप्न देखा जा सकता था यदि सरकार की अनुमति न होती? यदि नहीं तो आज अस्पृश्य समस्या भारत के लिये Curse सिद्ध हो चुकी है। आधुनिक हिन्दूधर्म का कोई पुरोहित प्रामाणिक हो सकता है। सामाजिक विषमता के जो जो करतूतें दुनिया की रंगमंच पर

दिखाई हैं कि सब हमारी आँखों के आगे हैं। रशिया आज Communist लोगों के प्रभाव में पूर्णतया हो चुका है। जर्मनी साम्यवाद के रंग में रंगा जा चुका है। सदियों से चले आ रहे पूंजीपति और श्रमजीवियों के परस्पर विवादों ने सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में जो आश्चर्यजनक परिवर्तन कर दिखलाये हैं उन सब से हम भलि भाँति परिचित हैं। आज २-३ देशों के Constitutions में यह बात आ चुकी है। Bill of rights या फुन्डेमेन्टल rights स्वीकृत किये जा चुके हैं।

आज हमारे विरोधी दल के भाई आवाज उठाते हैं कि untouchability Bill पास करना जनता के अधिकारों को छीनना और स्वतंत्रता का विनाश करना है। परन्तु क्या मेरे भाई ऐसा कोई देश दिखा सकते हैं जिसके Constitution में एक मनुष्य के अधिकार दूसरे से सर्वथा भिन्न हों? क्या समाज से सर्वथा परित्यक्त, अधिकार शून्य मनुष्यों को उनके अधिकार लौटाना दूसरों की स्वतंत्रता का अपहरण करना है? मुझे तो २६ अगस्त १७८९ का दिन याद आता है जब जनता के मूलभूत अधिकारों की उद्घोषणा करते हुए उद्घोषित किया गया था- "एक मनुष्य स्वतं

उत्पन्न होते हैं, सबके अधिकार समान हैं, सामाजिक भेद का आधार सार्वजनिक उपयोगिता के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है और चूंकि सरकार का प्रयोजन जनता के मूलभूत अधिकारों की रक्षा करना है तथा राज्य की स्वामिक शक्ति जनता में निहित है इसीलिये संविधानसभा जनता का प्रतिनिधि है यदि वह कोई कानून या मसविदा पेश करता है तो यह मानना पड़ेगा कि जनता का सर्वांश नहीं तो अधिकांश अवश्य सहमत है। यदि जनता का बहुमत एक कानून के पक्ष में है जो कानून कि लोगों की स्वतन्त्रता को बढ़ाने वाला नहीं प्रत्युत घटाने वाला है तो किस प्रकार अल्पमत को द्वेष के सन्मुख रख कर जनता के न्याय, जन्मसिद्ध तथा स्वाभाविक अधिकारों को कुचला जा सकता है? इस प्रकार अनेक देशों ने अपने उदाहरणों से यह सिद्ध कर दिखाया है कि जब तक सामाजिक विषमता को दूर नहीं किया जाता तब तक कोई भी शासक प्रतिनिधिमण्डल अपनी State में शान्ति और व्यवस्था को कायम नहीं कर सकता है। यही बात भारत के विषय में है। सामाजिक क्रान्ति की जो लहरें योरप के अन्य देशों में प्रस्फुटित हुई थी वे

हिलोरें लेती हुई हिन्द-महासागर को पार कर आज मद्रास में भी अपना प्रभाव प्रदर्शित कर रही हैं।

यह बात चमत्कार होकर दिखाई जाती रही है कि सरकार को समाज सुधार करने की क्या आवश्यकता है? परन्तु यदि इतिहास पर दृष्टिपात किया जावे तो पता चलता है कि सती प्रथा, बालवध और नरबलि को सरकार ने धार्मिक प्रश्न होते हुए बावजूद विरोध के दूर करने में अपूर्व सफलता प्राप्त की है। यही कारण है कि आज वेदियों पर बकरों के बाद मनुष्यों के गले उतार कर नहीं चढ़ाये जाते और बहिनें असमय ही में जीवन से हाथ नहीं धो बैठतीं। अभी शारदा बिल पास हुआ है। बच्चों की शादी को बन्द करने की कोशिश की जा रही है। उनके सरसे गृहस्थ के पहाड़ को उतार दिया गया है। विधवाओं के लिये Hindu widows re marriage act बनाया गया है। उत्तराधिकार और विवाह को नियंत्रित किया जा रहा है। स्वयं अछूतों की समस्या को ही लीजिये —: लैजिस्लेटिव कौंसिल और District Board में Depressed classes को seat देकर इस बात का प्रयत्न

पेश किया गया था कि अछूत समस्या का समाधान किया जा सकता है। प्रान्तीय सरकारें पिछले कई वर्षों से अछूतों की शिक्षा आदि के लिये निरन्तर प्रयत्नवान् हैं।

यही नहीं, यदि इसी प्रकरण में धार्मिक संस्थाओं के सम्बन्ध में दूसरे देशों की Governments की प्रवृत्तियों को देखा जाये तो पता चलेगा कि १८५० में जर्मनी में Culture Campf की लड़ाई में साम्राज्य की पार्लियामेंट ने कैथोलिक लोगों के विरुद्ध May laws पास किये थे। जेसुइट समुदाय को जर्मनी से बहिष्कृत कर दिया। प्रशिया तो इतना आगे बढ़ा कि पादरी लोगों की नियुक्ति और शिक्षा पर भी कन्ट्रोल किया गया। इसी प्रकार फ्रांस में १९०५ और १९०६ में फ्रांस सरकार ने चर्च के विरोध में अनेक कानून पास किये। इसी का परिणाम है कि मध्यकाल में फ्रांस में चर्च का जो अक्षुण्ण आधिपत्य था वह आज सर्वथा नष्ट हो गया है। १८८१ और १८८६ में कानून द्वारा बालक बालिकाओं की शिक्षा को चर्च के प्रभाव से हटा कर राज्य के आधीन किया। १९०२ में 'एसोसिएशन विधान'

कर १०००० से अधिक धार्मिक विद्यालय बन्द कर दिये। इसके दः वर्ष बाद अर्थात् १९१० में जहां सरकारी शिक्षणालयों में पढ़ने वालों की संख्या ५० लाख से अधिक थी वहां धार्मिक शिक्षणालयों में १ लाख से भी कम विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। १९०७ में 'पृथक् करण-विधान' पास बना कर चर्च की सम्पूर्ण सम्पत्ति और जायदाद को जब्त कर लिया गया। यही दशा आज इंग्लैण्ड की है। वहां का चर्च पूर्णरूप से पार्लियामेन्ट के अधीन है। west-minister, yorke, Canterbury आदि बड़े बड़े स्थानों के पादरी भी सरकार द्वारा ही नियुक्त होते हैं। इंग्लैण्ड ने तो इस मार्ग में इतना आगे कदम रक्खा है कि वहां के चर्च की प्रार्थनायें भी पार्लियामेन्ट द्वारा स्वीकृत होती हैं। यही बात अन्य देशों के विषय में कही जा सकती है। रोम का वह पोप जो किसी अतीत काल में अपने इशारे मात्र से जनता के हृदयों में भाव पैदा कर देता था आज स्वतंत्रता, सुख और सुध बुध को भुला कर कानूनों की बेड़ियों से जकड़ा पड़ा है। इसी प्रकार सोवियट रशिया, टर्की, अफ़गानिस्तान के उदाहरण सब की ज़बानों पर हैं।

आस्ट्रिया, बेल्जियम, स्पेन और पोर्चुगाल के समाज सुधार भी किसी के काम महत्व नहीं रखते हैं। तो क्या इतिहास इस बात का समर्थन नहीं कर रहा। क्या इसको सिद्ध करने के लिये इससे अधिक ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं? यदि नहीं तो हमारे भाइयों का असन्तोष दूर क्यों नहीं होता?

हमारे भाई एक प्रश्न और उठाते हैं। वह यह है कि घाट, मन्दिर, सड़कें और शिक्षणालय खोल देने से अछूतों की वास्तविक समस्या हल नहीं होती है। मेरा कहना केवल इतना है कि अछूत समस्या जहां तक अछूतपन से सम्बन्ध रखती है वह इससे दूर हो जाती है। शेष रहती है निर्धनता की समस्या। निर्धनता केवल अछूतों के पल्ले नहीं पड़ी है। भारत की ९० % जनता निर्धन है। वह सब अछूत नहीं है। इस प्रकार हमने देखा कि अछूत समस्या को दूर करने के धर्मानुकूल, समयानुकूल तथा न्यायानुकूल उपाय हैं अर्थात् अछूतपन को मिटाना एवं धार्मिक, सामाजिक और न्याय करना है।

पाठकगण! हिन्दू जाति का भविष्य आज अन्धकार में
है। सदियों से पिछड़ा हुआ मनुष्य जाति का एक समुदाय 'आहें भरें' के-
मारे लाचार बन रहा ... हा है ... अपनी फूटी कि-
स्मत को रो रहा ... भाइयो! आज
New & News ... के समय
की भाप उड़ा ... ने में होकर
व्यापार समझते हैं ... क मेरे भाई
अछूतपन को मिटा ... गे। समय
करेंगे विरोध नहीं ... हुए काठ
मुझे नजर आ- ... पुस्तक लिख
या, तो उनको ... है मुझसे न
लिखा जाता, तो ... देंगी।



ग्रुप मेकिङ्ग

ब्र. बालकृष्ण जी
उपस्नातक

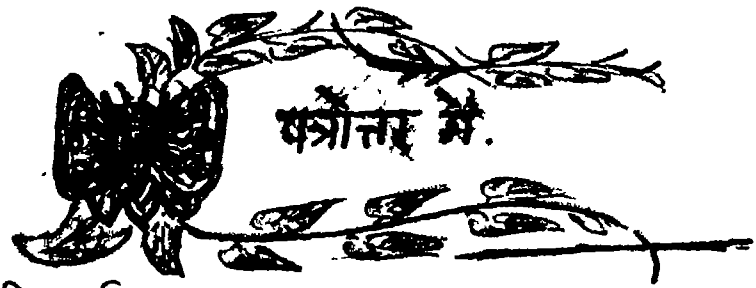
Group making क्या है ? और इस के क्या लाभ हैं ? यह बताना मेरे लिये बहुत मुश्किल है। यह तो केवल वह जान सकता है जो किसी शिक्षक के नीचे रहकर शिक्षा प्राप्त करे। यह एक क्रियात्मक चीज़ है। विचारात्मक या वर्णनात्मक नहीं। इस लिये इस को केवल करने से ही जाना जा सकता है अन्यथा नहीं। सत्रान्तानवकाश के दिनों में हमारे महाविद्यालय के विद्यार्थियों का एक दल श्री मास्टर नारायणराव जी की अध्यक्षता में group making or Pyramid Building की आकर्षक और मनोरञ्जक व्यायामों का अभ्यास करने के लिये गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ, देहली आदि स्थानों पर रहा था। मैं भी उस दल में था। Pyramid Building या group making के व्यायामों का विशेष उपयोग सामान्य जनता में प्रदर्शित ही है, यह अभ्यास देखने में बहुत आकर्षक और आश्चर्यजनक प्रतीत होते हैं;

जनता इन को देख कर स्तब्ध रह जाती है और दान्तों तले अंगुली दबाती हैं। शरीर संघटन और शरीर की समानुपातिक वृद्धि की दृष्टि से इससे अधिक उपयोगिता नहीं है। इन अभ्यासों के कुछ चित्र पत्रिका में प्रकाशित हो चुके हैं और बहुत से भाई अन्य आवश्यक अभ्यासों को जानते ही हैं। इन सब अभ्यासों में निचली मञ्जिल की दृढ़ता और स्थिरता की अधिक आवश्यकता होती है। इस से ऊपर की मञ्जिलों में साहस और निडरता की आवश्यकता होती है। धीरे २ अभ्यास से कठिन से कठिन स्थान को भी भरना सुगम हो जाता है। मास्टर जी का दो महीने निरन्तर अभ्यास कराके दल को तैय्यार करने का उद्देश्य - अर्धशताब्दि के अवसर पर गुरुकुल कांगड़ी की ओर से व्यायामों का प्रदर्शन कराना ही था। परन्तु अजमेर में व्यायामों के प्रदर्शन का समुचित प्रबन्ध न होने के कारण हम ने अनुभव किया कि हमारा सारा ~~काम~~ परिश्रम व्यर्थ ही गया है। अजमेर के मेयो कालिज में राजकुमारों के सन्मुख भी हम व्यायामों का

प्रदर्शन करने में समर्थ हुए। राजकुमारों ने हमारी खेलों को अत्यधिक पसन्द किया। group making या Pyramid Building से शरीर के विकास में कोई विशेष सहायता नहीं मिलती इस का प्रमाण यह है कि हमारे दल के किसी भी सदस्य को इससे विशेष लाभ नहीं हुआ। प्रतिदिन नियमपूर्वक 6½ घण्टे अभ्यास करने पर, और अच्छे से अच्छा भोजन भी प्राप्त होने पर सब का स्वास्थ्य गिर गया। शायद इस का कारण यात्रा में नियमित भोजन न मिलना जलवायु का अनुकूल न होना, और व्यायाम की अतिशयता भी हो, परन्तु इतना मैं कह सकता हूं, ऊपर की मञ्जिलों में जो रहते हैं उन का कुछ व्यायाम नहीं होता और भय के मारे उन का खून सूख जाता है और चेहरे पीले पड़ जाते हैं चाहे उन्हें पर्याप्त अभ्यास हो जाये तो भी ऊपर की मञ्जिल में रहने वालों को भय लगता ही है। निचली मञ्जिल में रहने वालों का काफ़ी व्यायाम होता है, परन्तु अब दूर हो जाता है तो

उनके स्वास्थ्य को बहुत धक्का लगता है। इन अभ्यासों के अंग रूप व्यायामों को हर एक व्यक्ति इकला भी कर सकता है और उनके नियम पूर्वक करने से बहुत अधिक लाभ उठ सकता है। यह 'अंगरूप व्यायाम' कई प्रकार के आसन ही हैं जैसे चक्रासन हाथों के बल खड़ा होना, आदि। Group making or Pyramid Building इन्हीं आसनों के सम्मिश्रण से ही किये जाते हैं। इन आसनों के करने के क्या लाभ हैं यह केवल आसनों के करने से ही जाने जा सकते हैं।





प्रिय भाई .... !

सप्रेम नमस्ते। तुम्हारा पत्र मिला। तुम ने 'कुसमय' में मुझे याद किया है, यह बहुत अच्छा किया। तुम ने सहायता मांगी है, मुझे हर्ष है कि मैं सहायता दे सकता हूँ। पहले पहल तुम्हें यह समझना चाहिये कि तुम्हारी समस्या आचार-व्यवहार-की है, विचार की नहीं। तुम्हारे हृदय में जो इच्छा-वासनायें जाग्रत हुई हैं, और जिन के विरुद्ध तुम निरन्तर युद्ध चला रहे हो, उन का उद्देश्य क्या है और उन से तुम्हें कैसे पेश आना चाहिये, यही जानना चाहिये। वैराग्य, सर्प रज्जु, ईश्वर का निर्गुणत्व अथवा सगुणत्व, इन्द्रिय और आत्मा – इन सब बातों के बारे में जो कुछ विचार तुमने दूसरों से पाये हैं उन सब को भुला कर पहले तो अपने मन को साफ़, खुलासा open कर लो। तुम को यह नहीं देखना

है कि दूसरे क्या सत्य बताते हैं, बल्कि यह कि तुम्हारे हृदय को क्या सत्य मालूम होता है। जो कुछ तुम्हारे हृदय को सत्य मालूम होता है, उसी को पकड़ो। पहले पहल तो बहुत कुछ अस्पष्ट होगा, किंतु आचार की समस्या हल करने में वह स्पष्ट होने लगेगा - हृदय का सत्य प्रकट होने लगेगा। पहला काम तो यह है कि दूसरों से प्राप्त ज्ञान के मोह - second hand knowledge - को छोड़ो और हृदय के प्रकाश के लिये मार्ग साफ करो —

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।

दूसरी बात हृदय की वासनाओं से कैसे पेश आया जाये, उन के साथ कैसा व्यवहार किया जाये, क्या Attitude ली जाये, यह है। तुम को दो ही मार्ग दिखाई देते हैं, या तो उन के दुर्दम बहाव में बह जाया जाये - उन के वशीभूत हो जाये और या उन से निरन्तर युद्ध किया जाये। पहिले मार्ग से तुम डरते हो और दूसरे को तुमने ग्रहण किया है। परिणामतः तुम्हारा जीवन अशान्त, दुःखमय, बेचैन हो गया है। मैं तुम्हें

बताना चाहता हूँ कि एक तीसरा मार्ग भी है, और उसी को अवलम्बन करने के लिये मैं तुम्हें अनुरोध करूंगा। वह मार्ग यह है कि उन इच्छाओं में लेश-मात्र भी राग- आसक्ति न रखी जाये, और उन के साथ ही उन के प्रति लेश मात्र भी द्वेष न रखा जाये। अपनी इच्छाओं को ऊपर से, उदासीन भाव से, अनासक्त रूप से देखना सीखो। जाने रहो कि तुम्हारे द्वेष-घृणा के भाव ने ही, उन इच्छाओं को इतना प्रबल उग्र कर दिया है। यदि तुम उन को दबाना, कुचलना- उन से युद्ध करना -छोड़ दो, तो वह समय पाकर स्वयं ही शान्त हो जायेगी। तुम समझते होगे कि ऐसा करने से तुम उन के वेग में बह जाओगे। मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि इच्छाओं के वेग में बहते वही हैं जो इच्छाओं को दबाये-कुचले रखते हैं। एक दिन ऐसा आता है कि इच्छाओं का वेग इतना प्रबल हो जाता है कि उन की बरसों की तपस्या तिनके की तरह बह जाती है। जो एक दिशा में अतिशयता करता है, वही फिर विपरीत दिशा में भी अतिशयता - extreme - पर पहुंचता है। इच्छाओं से राग रखना, और उन से द्वेष

रखना - युद्ध करना - यह दोनों अतिशयता के मार्ग हैं - ये भ्रामक हैं। इन दोनों को छोड़े, और इन दोनों के बीच का, इन दोनों से अतीत, युक्ता-हार-विहार-चेष्टा-आचार का मार्ग ग्रहण करे।

इस को ग्रहण करने वाले के लिये सब से पूर्व यह समझना आवश्यक है कि हृदय में उठने वाली इच्छा-वासनाओं के उत्पन्न होने में उस की लेश-मात्र भी जिम्मेदारी नहीं है। यह तो एक स्वाभाविक-प्राकृतिक क्रिया है। जिस प्रकार से हृदय धड़कता रहता है, फेफड़े, आंते, मस्तिष्क काम करते हैं, उसी प्रकार से इच्छा-वासनायें भी उत्पन्न होती रहती हैं। जिस प्रकार से प्रथम क्रियायें पुरुष की इच्छा के आधीन नहीं हैं, उसी प्रकार दूसरी भी। और भी, ये वासना-कामनायें तो पुरुष की इच्छा के विरुद्ध कहीं उत्पन्न होती हैं। उन की उत्पत्ति में पुरुष की ज़िम्मेदारी हो ही नहीं सकती। वे अगर उत्पन्न होती हैं, तो होने दो। जहां से वे उत्पन्न हुई हैं वहीं वे समा जायेंगी। पुरुष की ज़िम्मेदारी उन-की उत्पत्ति में नहीं है, किंतु उन के प्रति राग-द्वेष भाव धारण

करने में। यदि वह उन से राग रखेगा तो अपने-आप को खो बैठेगा, यदि उन से द्वेष करेगा तो निरन्तर युद्ध संलग्न रहेगा और हार जाने की आशंका बनी रहेगी। उस के लिये तो सर्वश्रेष्ठ मार्ग यह है —:

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोह मेव च पांडव।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति॥
उदासीन वदासीनो गुणै र्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥

— — ✻ — —

आपूर्यमाण मचल प्रतिष्ठं समुद्र मापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्ति माप्नोति न कामकामी॥

अपने मोह-वासनाओं को उदासीन बन-ऊंचे बैठे हुवे के समान - निर्भय होकर देखना सीखो। जिस प्रकार समुद्र गिरने वाली नदियों से विचलित नहीं होता, उसी प्रकार तुम भी हृदय में उठने वाली वासनाओं से घबराओ नहीं, डरो नहीं, उन से लड़ो मत। समझे रहो कि वे तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकतीं। वे तो ऐसी वस्तु हैं जो कि आती हैं और जाती हैं। जो इच्छायें उस समय बड़ी भयंकर

लगती हैं वे ही कुछ समय में बिल्कुल शान्त हो जायेंगी। यदि तुम द्वेष-रूपी ईन्धन डाल कर उन्हें भड़काते न रहो।

उपरोक्त मार्ग ही मैं तुम से ग्रहण करने का अनुरोध करूंगा। यही वैराग्य है। मैं ने कोशिश तो की है किंतु मुझे पता नहीं कि मैं तुम्हें समझा सकने में कहां तक सफल हुआ हूं। यह मार्ग शायद बहुत कठिन मालूम हो, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। इस का अभ्यास करो; और यदि इस में कुछ सत्य है तो यह अधिकाधिक सरल होता जायेगा। सब प्रकार की अतिशयताएं छोड़ दो। बिल्कुल एकान्त सेवन और अन्य तपस्यायें छोड़ दो। साधारण-भाव से रहो। जिस मार्ग से हृदय में शान्ति और आनन्द अनुभव न हो, उस में जरूर कहीं कोई ग़लती है यह जानते रहो। इन टेढ़े मेढ़े मार्गों को ग्रहण न करो। हर दशा में स्वाभाविक रहो। इस समय तो इतना ही।

तुम्हारा भाई

शुभेच्छु

राम कृष्ण

(M. B. B. S.)

वीर्यरक्षा.

यदि वीर्यनाश के भयानक परिणाम दिखला दिये जायं तो वीर्य रक्षा के लाभों का, उनके विपरीत होने से, स्वयं पता लग जायगा।

१. सिर में दर्द। वीर्यनाश करने वाले को सबसे पहिले सिर दर्द आकर पकड़ती है। ऐसा आदमी विचार का काम नहीं कर सकता। पहले तो उसका मन ही नहीं लगेगा और बेचैनी होगी। और यदि जबरदस्ती उसने मन को लगाया भी तो उसके सिर में दर्द आरम्भ हो जायगी, कुछ अधिक परिश्रम करने से आधे सिर की दर्द हो [redacted] जाती है अथवा सिर में दर्द स्थिर हो जाती है। सिर में स्थिर दर्द का कारण दिमाग के रक्त का विकृत हो जाना है। रक्त खराब होकर वहां इकट्ठा हो जाता है और सिर में दर्द उत्पन्न कर देता है। नाड़ी छेदन करके इस रक्त को बाहर निकाला जाता है। और कोई उपाय नहीं है। इस विकृति का कारण वीर्य हानि है। वीर्य के नाश

शरीर में गर्मी रहती है, इस गर्मी के कारण शरीर अच्छी प्रकार कार्य करता है, यदि यह गर्मी शरीर में कम हो जाय तो स्नायु (nerves) दिमाग को अधिक शक्ति को खर्च करेंगे, और अधिक खर्च हो जाने से रक्त में उष्णता कम हो जायगा और रक्त के एक स्थान में [illegible] के रहने से सिर का दर्द हो जायगा [illegible] रहे तो केवल काल के कम होने से ही होती है। [illegible] में भी दर्द होने की सम्भावना है। हड्डियाँ ढीली पड़ जाने से [illegible] जाती हैं। जैसे अवस्था में भी देखी एक [illegible] सिर पीड़ा होने लगती है। साधारणतया यदि होती भी है तो ४० वर्ष के बाद होनी चाहिये, क्यों कि लिखा है कि यह समय [illegible] का होता है। युवा पुरुष को तब सिर पीड़ा हो सकती है जब कि उसको [illegible] हो, आदि [illegible] युवा पुरुष के सिर में दर्द का कोई कारण के सिवाय और की आदत नहीं है।

२. शरीर में सिकुड़ने भी चलने लगती है। [illegible]

मनुष्य को थोड़ा सा भी अधिक काम करना पड़े या उ
गर्मी सहन करनी पड़े तो उसके शरीर में सिकुड़ियें भी
पड़ने लगेंगी। ज्यादा करने से भी गर्मी शरीर में बढ़ती
है अतः गर्मी ही कारण कहना चाहिये। वीर्य नाश से
शरीर में स्निग्धता का नाश होता है। अतः गर्मी के
कारण मांस के छोटे २ भागों में कड़ाव होता है वह
ही सिकुड़ियें प्रतीत होती हैं।

३. पिण्डलियों में दर्द होने लगता है। वीर्य
नाश से मांस पेशी ढीली तो पड़ ही जाती हैं और चलने
फिरने के समय के जारी रहने से पिण्डलियों पर अधिक
जोर पड़ता है जिससे शरीर सहारने की शक्ति उनमें नहीं
रहती, अतः एव पिण्डलियों में दर्द होने लगता है।

४ उदासी छाई रहती है, कुसंग की ओर रहती
मन में विकल्प बेहद उठते रहते हैं। अपने को उ
होता है अतः दूसरे की अच्छी बात को भी यह
मानता है कि इसमें जरूर इसका कोई स्वार्थ है या
मुझे नुकसान पहुंचाने के लिये करता है। दूसरों पर से

विश्वास उठता जाता है। ऐसा मनुष्य उन्मादी और चिड़चिड़ि-
ने स्वभाव वाला बन जाता है। जब दूसरों की बात है अच्छी
नहीं लगती तो स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। उदासी
और निराशता आदि अवस्थाओं को भी हो सकती हैं —
परन्तु इन अवस्थाओं की उदासीनता स्थायी हो जाती है
आनन्द भी उदासी रहती है

८. स्वप्न-वीर्यनाश से कब्ज हो जाती है।
क्यों कि वीर्यनाश के कारण आँतड़ियां भोजन को
ठीक प्रकार से न पचा सकती हैं और नहीं उसे —
पचा कर बाहर निकाल सकती है। शौच के बाहर
निकलने में शौच स्थान (गुदा में) नाड़ियों में भी बल
खिंचता है, जिससे मल का शौच निश्चित मात्रा,
पतला होकर बिना तकलीफ के बाहर निकल जाता है।
वीर्य के निकलने से शरीर में खुश्की हो जाती है
उस खुश्की को रोकने के लिये जल कम होने लग-
ता है और शौच सख्त हो जाने के कारण आसानी से
बाहर नहीं निकल सकता। परन्तु जब [illegible] जल

भड़के लगता है तो नाड़ियों पर उसका प्रभाव पड़ने से
ज्वर हो जाता है। ज्वर का होना शरीर में गर्मी
का बढ़ जाना माना है। उस मौच को बाहर निकालने
को (लोहा धातु) nervous शक्ति प्राप्त करती है।
जिससे गर्मी बढ़ जाती है। परन्तु वीर्य नाश करने-
वाला आदमी स्नायु शक्ति का व्यय नहीं कर सकता
अतः उसे बाह्य साधन औषधि या उपचार आदि
विवेचन करने की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे आद-
मी को पानी की प्यास अधिक लगती है उसे पानी पीना
चाहिये ताकि मौच बाहर करने में सहायता मिले
नाड़ियों में पानी कोष से खिचता है। कोष में पानी
कम होने से प्यास लगती है। कर्णों रहने का अर्थ
एक यह भी है कि बायीं नाक को बन्द-
करके और दाहिनी से श्वास ले। सम्भव है इसका
कारण यह हो कि दाहिनी श्वास चलने पर दाहि-
नी नाक से कोष तक सम्बद्ध nerve द्वारा
कोष पर दबाव डलता है जिसके कारण वहाँ से पानी

निकल कर आंतड़ियों में जाकर कब्ज हटावे। यदि ऐसी अवस्था मनुष्य की पहुंच गई है कि कब्ज नहीं हटती तो ज्वर हो जाता है और खींच लाने के लिये मनुष्य जब जोर लगाता है तो अतिसार हो जाता है अतिसार से पूर्व अवस्था में कोई ठोस वस्तु न खानी चाहिये, परन्तु द्रव वस्तु खानी चाहिये, ताकि कब्ज हट सके। जिनको कब्ज होती है उनको प्रायः जुकाम भी हो जाता है। विचारणीय यह है कि कब्ज और जुकाम का क्या सम्बन्ध है। दिमाग से एक मोटा nerve (Vagus) निकलता है जो सारी भोजन नलिका अर्थात् मुख से गुदा तक, और फेफड़े तथा हृदय में भी गति देने का काम करता है। कब्ज के कारण इस nerve में Irritation पैदा होती है— उसमें कुपित हुआ वात या यह nerve जहां २ जाती है वहां २ कुछ न कुछ Irritation पैदा करता है अत एव नासिका के ऊपर जो glands हैं उनमें Irritation होकर नाक से पानी जाने लगता है।

लगता है। कई मनुष्य समझते हैं कि बल की वृद्धि हो गई है कुछ दिन बढ़ाने वाली वस्तुएं खायें जिससे नुकसान ठीक हो। परन्तु वे खाई हुई वस्तुएं अधिक उत्ताप उत्पन्न करती हैं जिससे वीर्य का अधिक नाश होता है और मन्दाग्नि तथा नुकसान आदि बीमारियां और अधिक बढ़ जाती हैं। उसी प्रकार पेट के बिगड़ने के कारण किसी के नुकसान करने से बढ़ अजीर्ण होती है दर्द आदि भिन्न २ बीमारियां भिन्न २ को आ पकड़ती हैं। दवाइयों को खाने से कुछ लाभ नहीं कुछ नाश ही रहेगा। यदि जड़ को नाश किया जाय तो वृक्ष गिर पड़ेगा, यह ही बात यहां है। वीर्य रक्षा के उपायों को उपयोग में लाकर यदि वीर्य साधन किया जाय और साथ पथ्य पर ध्यान दिया जाय तो सर्व बीमारियां आप से आप भाग जाती हैं, अन्यथा आदमी पछताते रहते हैं। तीन २ चार २ दिन के बाद जिन्हें वीर्य नाश करने की आदत पड़ गई है वे एक बार

करने के लिए पश्चात्ताप, पश्चात्ताप के बाद कुछ संयम बांधने के द्वारा रहना आरंभ करते हैं और दूसरे या तीसरे दिन के बाद कहते हैं कि अब कुछ जुकाम से आराम है। अब क्या है कल परसों हट जायगा। फिर जब हटने का मौका आया तब एक बार फिर वही नाटक कर-लिया, अगले दिन फिर करने लगे अपनी वे पुरानी पड़े स्वाद हैं। जुकाम इसी तरह घेरा रहने में भी नहीं जाता। इस प्रकार उन लोगों की बीमारियां बढ़ती चली जाती हैं और स्थायी होती चली जाती है। कफ आदि की वृद्धि होना ऋतु के अनुसार भी होता है सर्दी में कफ बढ़ता है, गर्मी में पित्त और वर्षा में वात। ऋतुओं का परिवर्तन और शरीर में उन्हीं क्रम से इनकी वृद्धि ऐसी स्वाभाविक है कि वह परिवर्तन शरीर के लिये हानि कारक नहीं, यदि मनुष्य वीर्य रक्षा को करता हुआ और नियम पूर्वक रहता हुआ ऋतुओं के अनुसार आहार व्यवहार करता रहे यदि मनुष्य स्वयं अपने को स्वस्थ करना शुरू करे

तो प्राकृतिक परिवर्तन, जो उसके लिये लाभदायक होने थे, उसके सामने मृत्यु का स्वरूप ला खड़ा करता है। मनुष्य सैकड़ों दवाइयें करता है, लाखों उपाय करता है परन्तु सब व्यर्थ होते हैं और मृत्यु के मुख में जाना ही पड़ता है। दवाइयों से जहां तक हो बच कर ही रहना चाहिये। साधारण भोजन पान अर्थात् पथ्य करता हुआ, अपर मैथुनों से बचता हुआ, नियम पूर्वक रहे तो छोटी मोटी बीमारी, किसी अन्य हो भी जाय तो भी वह बिना दवाई के दूर हो जाती है वहीं तो दवाइयें प्रायः उलट पुलट करते शरीर को विकृत करने वाली होती हैं। छोटे २ बीमारियों को नाश करती हुई भी मूल कारण को नहीं हटा सकती उल्टा बढ़ाते हैं। यथा—:

मैं स्ट्रीकनीन नामकी औषध जो एक वृक्ष की छाल है बीज रूप भी होते हैं। कुचला चूर्ण — डिग्री में दिया जाता है। यह कुछ लाभ के डिग्री को तो लाभ पहुंचाता है परन्तु साथ होकर

[illegible] को बढ़ाने के लिये यह पर्याप्त है। वह ही अप से लम्बा
nerve वीर्यनाशक इकत्र के शरीर में [illegible] [illegible]
का कार्य ठीक नहीं करता तो कई बीमारियां हो जाती हैं

६. डाइबिटीज़ या मधुमेह हो जाता है। स्वादु
उन नाकं ख्वाण्ड के रूप में पाचन उभार जैसा ही
निकल जाता है, बहुत थोड़ा अंश रूपान्तर हो कर वीर्य
तक पहुंचता है। साधारण तौर पर ६० वर्ष के बाद मधु
मेह होता है क्यों कि इस समय यदि कार्य अधिक
करना पड़े, बहुत देर तक बैठना पड़े तो यह रोग हो जाता
है। यह रोग अधिक वीर्य रहने से और अधिक विचार
का काम करने से होता है। यदि विचार का काम
भोजन पचने से पहले हो या भोजन खा कर शीघ्र ही
आरम्भ कर दिया जाय, क्यों कि जो शक्ति भोजन को
पचाने में लगनी चाहिये थी वह विचार में खर्च होने लग
ती है और भोजन ठीक नहीं पक सकता। अधिक वीर्य
भी नहीं रहना चाहिये। पापाचार और गुप्त वीर्यनाश भी
बचाते हैं। पुरुषों को यदि मधुमेह हो तो उसका

लगन वीर्यनाश होते हैं। यह बीमारी के बाद —

6. दमा हो जाता है। यदि श्वास ठीक आता जाता रहे तो दमा नहीं हो सकता। मनुष्य को चाहिये इससे बचने के लिये खुली हवा में रहे, स्वच्छ स्थान और स्वच्छ हवा में रहे जैसे [illegible] आदि। नमी जहां हो वहां न रहे। पहाड़ की तराई में न रहे कब्ज भी कारण है। इस कब्ज के कारण लोगों में वीर्यनाश की प्रवृत्ति अधिक होती है। अतः कब्ज न होने देनी चाहिये। कब्ज से बचने का उपाय यह है कि शौच का समय नियत करलो। दो समय शौच जाना अच्छा है। एक समय से यदि ठीक [illegible] हो भी कोई हानि नहीं। रात को भोजन दिन की अपेक्षा कम करो। फिर भी यदि अच्छी तरह से [illegible] अवश्य के रहता हो तो दिन को भी थोड़ा भोजन करना चाहिये। दोनों समय नित्य व्यायाम करो। संध्या के समय विधि पूर्वक प्राणायाम करो। यदि मल अन्दर ही रहे तो पुनः पक्का कर मल निकालने का ख्याल करो

है। रोटी के १४ या १० मिनट बाद लघुशंका अवश्य जाना चाहिये। शौच के समय स्वाभाविक नाक से श्वास लिया करो। रात्रि को भोजन के समय कुछ भारी इस पदार्थ न खाने चाहियें। प्रत्येक काम को मन लगा कर करो। इन उपायों के करने से कब्ज न होगी अथवा पुरानी भी थोड़ी होगी जो शीघ्र हट जायगी।

हृदय रोग वालों के लिये व्यायाम बन्द है, इस कथन का यह अभिप्राय नहीं कि वे व्यायाम करना ही न चाहिये। इसका यह अर्थ है कि इस प्रकार के व्यायाम न करें जिससे थकावट हो। वह यदि अपने शरीर का भार पड़ने पर भले चल चलें और थोड़ा सा कुछ कर सकें तो; इस प्रकार चलने से बाधायें हो जाती हैं, शरीर पुष्ट रहता है, आलस्य के नष्ट से जब कोई मनुष्य काम आरम्भ कर सकता है। चलने का यह ही प्रकार सबसे उत्तम है। Andrew of Jackson Davis ने Harmonious — development की शिक्षा। परन्तु हमारे यहाँ

वेद के काल से ही से यह समता का भाव मौजूद है "भद्रं
[illegible] इत्यादि" आजकल भी आशा यह ही मत-
लब है कि "Harmonious development"
आत्मावस्था में शरीर को रखना चाहिये।

कई लोग ऐसा समझते हैं कि जिस प्रकार
जी का खूब लाल चेहरा प्रतीत होता है अथवा मोटा
ताजा है, अथवा जो भार बहुत उठा सकता है अथवा
जो बड़ा पहलवान है वह ब्रह्मचारी है यह बात नहीं।
वीर्य रक्षक ही हृष्ट पुष्ट सुगठित [illegible] शरीर वाले हो सकते
हैं परन्तु इससे इतर अन्य इन्द्रियों का भी अर्थ संयम
नहीं तो वह भी पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं है। व्यायाम एवं [illegible]
रखते हुए भी बड़े २ पहलवान बड़े कामी होते हैं। एक
छोटे से आदमी [illegible] जाते हैं। रात को घर से १०
[illegible] दूर तक भी जाने में [illegible] उनके [illegible]
निकालते हैं। वे सदा ब्रह्मचारी भी नहीं हो सकते

५. Impotent क्लीव हो जाता है।

६. पागल हो जाता है। कुछ पागलों में से —

sexual disease या वीर्य स्राव के बनते हैं, रोग ... आदतों से

१०. चिड़चिड़ापन, उदासी, क्रूरता, वैमनस्य, मन्द बुद्धि भी ... हो जाती है।

११. आत्मघात करने लग जाते हैं।

१२. आत्मघात किया किये भी मनुष्य जल्द मर जाते हैं। कई बालकों को ६-७ वर्ष से ही बुरा अभ्यास पड़ जाता है। मैंने एक अमेरिकन अखबार पढ़ा। उसमें लिखा था कि १३-१४ वर्ष के दो लड़कों में सिगरेट पीने में मुकाबला हुआ। सिगरेट पीने के प्राण शक्ति का ह्रास होने लगा और १०वां सिगरेट पीता २ १३ वर्ष का लड़का मर गया। समझना चाहिये कि नशा किस प्रकार प्राण शक्ति का ... नाश करते हैं। वीर्यनाश से तो बहुत ही प्राण ~~शक्ति~~ ... शक्ति बिगड़ती है।

ये परिणाम मैंने बचने के लिये बताये हैं। मैं तो चाहता हूं कि यहां के ब्रह्मचारी प्राण विधा

को भीतर पर बाहर अच्छे गृहस्थों के आदर्श को स्थापित करें, और ब्रह्मचर्य का सेवन करें। वहां भी मनुष्य स्वस्थ हो सकता है। किसी ने लिखा है, पशु मनुष्य से अच्छे हैं। क्यों कि पशु सन्तानोत्पत्ति के लिये ही मिलते हैं, अन्यथा नहीं।

बाल्यावस्था में यदि ठीक रहोगे तो वृद्धपन में भी रह सकोगे। मुझे पता है कि 30 वर्ष की आयु के बाद भी जिन लोगों ने संयम से रहना आरम्भ किया वे फिर 10 वर्ष में ही सदा के ब्रह्मचारी मालूम होने लगे हैं। अपनी सब गिरी अवस्थाओं को भूल कर नये सिरे से जीवन शुरू करें।

आगे बताया जायगा कि आक्रमण कहां से आते हैं अर्थात किन कारणों से विवश हो कर ब्रह्मचर्य का नाश होता है और उनसे बचने के क्या साधन हैं। लोग आनंद के लाभार्थ गन्दे आचरण करते हैं। आनन्द तो स्वच्छता में भी मिलता है। गोसे गन्दगी

की खोज करें इससे भी हो सकती हैं

जिस काम के ऐसे परिणाम हैं उस काम को कभी न करना चाहिये। इसके लिये प्रात: काल की ब्रह्ममुहूर्त सर्वश्रेष्ठ है। प्रातः से मनुष्य को दिन भर का समय विभाग बना लेना चाहिये। किसी जीवन के लक्ष्य को सामने रख कर उसके साधनों की पूर्ति के लिये अपने सारे दिन को बांट लें। इस प्रकार मनुष्य को जीवन का कोई समय ही न मिलेगा। वरन् उन्नति ही उन्नति करता जायगा। स्वामी दयानन्द जी लिख गये हैं कि ईश्वर के भक्तों को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये जिससे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन हो सके उन्होंने यह भी लिखा है कि ५ वर्ष का लड़का लड़कियों के आंगन में और ५ वर्ष की लड़की लड़कों के आंगन में न जाने पावें। आजकल देश की दशा बिगड़ गयी, अतः ऐसे नियम बनाने पड़े। भारत में प्राचीन काल में ऐसे नियम थे कहीं तो प्रत्येक का परिवार होता था उसमें लड़के लड़कियां सब इकट्ठे रहते

क्रीड़ा

ब्र० जगद्भानु जी.

आज से ठीक २८ साल पूर्व श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी के हाथों से हॉकी ने गुरुकुल में प्रवेश किया था। प्रारम्भ में नये जोश तथा नयी वस्तु के कारण लोग इसकी तरफ खूब खिचें। गुरुकुल के बड़े बड़े अधिकारी क्रीडाध्यक्ष का पद गौरवपूर्ण स्थान समझते थे। लड़कों के साथ खेल में सम्मिलित होना कोई ऐसी बात न थी कि कोई अपने बराबर वालों में गिर जाय। कई प्रोफेसर बिना चूके खेलों में प्रतिदिन भाग लेते थे।

यही कारण था जिसने कि गुरुकुल की खेल चरमसीमा तक पहुंचा दी। गुरुकुल के ऊंचे दिमाग और ताड़े इसकी ओर खिंचे पड़ते थे। स्वयं श्रद्धेय कुलपिता प्राचीन सामुरथ्य में खूब जोश दिलाते थे। बिना किसी सिखाने वाले के हमारे पुराने स्नातक इतने बढ़े कि भारत के नामी २ टूर्नामेण्ट गुरुकुलवालों के लिये लालायित रहने लगे। मेरठ की शानदार विजय इसका ज्वलन्त उदाहरण हुआ। स्वयं सहायक मुख्याधिष्ठाता और एक मान्य प्रोफेसर इस दल के साथ गये थे। उस समय खिलाड़ी होना गुनाह न था, खेल को खराब न समझ कर गुण माना जाता था। मन की एकाग्रता तथा निर्द्वन्द्व होकर काम आने का सबसे अच्छा स्थान हॉकी का मैदान था।

मेरठ गये हुये विद्यार्थी अपने आप एक उत्साह का हाथ अनुभव करते थे और इसीलिये उन्होंने प्रथम बार और सफलतया अभिमान कुलमाता का सिर विजय से ऊंचा कर दिया। महता गेट से यज्ञशाला तक फूलों की माला लिये कुलवासी उनकी अगवानी में खड़े थे

कुलपिता की छाती अपने पुत्रों की इस विजय पर दुगनी हो गई थी। कुछ समय गया और साथ में भाव भी चले गये। खेल को बढ़ाना ही शिक्षा की उन्नति का साधन समझा जाने लगा। कुलपिता के जाते ही अधिकारियों के रुख पलटे। खिलाड़ी हाथ में डण्डा लिये शासन के मत माने जाने लगे। प्रतिबन्धों की बाढ़ सी आने लगी। जो फूल अभी ठीक प्रकार विकसित भी न होने पाया था कि काल के अकाल हाथों से मसल डाला गया। खेल का सामान तो पूर्ववत् आता रहा परन्तु मन के खिलाड़ियों पर निगरानियां होने लगीं।

इसका परिणाम तो स्पष्ट था। खेल का ढांचा तो रह गया पर उसके अन्दर जीवन न रहा। तब से हार ही हार . .

आज भी उसी समय खेल की घन्टी बजती है। इसी प्रकार नीली निकरें तथा रंग बिरंगी हॉकियां लिये खिलाड़ी मैदान में जमा होते हैं। पर वह उत्साह और अभिमान उनके चेहरों पर नजर नहीं आता। हररोज की हारों ने उनके दिल मसल डाले हैं। रही सही कसर इधर उधर की तानेबाजी पूरा कर देती है। चारों तरफ से 'हार' अपना मुंह बाये दौड़ती है। नीचा सिर किये चुपचाप खेत में खेलकर उन बिचारे ११ व्यक्ति के बच्चों से जीत की आशा रखना मूर्खता है।

अधिकारियों के लिये क्रीड़ाध्यक्ष का पद एक अपमान का स्थान है, क्रीड़ाक्षेत्र उन्हें काटने को दौड़ता है। जिसे विद्या का एक अंग माना गया था उसे आज लोग ~~उसे आज लोग~~ शरारती तथा निकम्मों का अड्डा समझते हैं। आज कोई खेल का मैदान नहीं है। ब्रह्मचारी खुद खुरपियां लेकर चलने को तैयार हैं पर उन्हें नेता चाहिये। जब तक कुल के सम्माननीय अधिकारी इस तरफ ध्यान न देंगे तबतक इस की उन्नति असम्भव है। गुरुकुल के आधुनिक खिलाड़ियों में खेल का कोई दल अखिल भारतीय टूर्नामेंट जीतना चाहे तो यह चाहने वाले की मूर्खता है। खेल में सहायता देने की

अपेक्षा उसमें रोड़े अटकाना आजकल उसका उद्देश्य बनाया गया है। जिस स्थान को खिलाड़ियों ने ४ साल के अनवरत परिश्रम द्वारा तैयार किया उसे महाविद्यालय निर्माण का स्थान समझकर छीन लिया गया तथा उसकी जगह उन्हें कोई मैदान बना कर न देना सचमुच अन्याय है।

कुलपिता के पवित्र नाम पर होने वाले साप्ताह में यदि आप कुल विजय होता है तो भी अधिकारी उसे बुरा समझते हैं। आदेश वितरण के समय भी कुल के विजयी भाइयों को प्रोत्साहन देने के बदले विजय के लिये कोसना यदि रोड़े अटकाना नहीं तो और क्या है। ऐसी भयंकर अवस्थाओं में भी जो भाई खेल चला रहे हैं उनके सामर्थ्य की और उत्साह की सराहना करनी ही पड़ती है। पर अधिकारियों की कड़ी निगाहें हमें मौन रखती हैं। अधिकारियों के असयोग के साथ २ आज हमारे भाइयों का भी हमें सहयोग नहीं। महाविद्यालय के ८० छात्रों में से २२ छात्र दोनों समय छोड़ सिर्फ सायंकाल १ घन्टे के लिये भी खेलने नहीं आते। श्रीमानजी और मुखिया जी तक खुशामदें करते हैं किन्तु पर हमारे कानों में आवाज ही नहीं पहुंचती। मैं अपने भाइयों को कहना चाहता हूं कि आज दूसरों के सहारे खड़े होने का समय नहीं रहा। जो व्यक्ति अथवा समाज अपने पैरों पर खुद खड़ा भी नहीं हो सकता उसका नाम संसार से मिट जाना आवश्यक है। भाइयो आईये यदि आप चाहते हैं कि हमारा कुल विजयी हो और यदि आप अपने कुलपिता के नाम पर चलो टूर्नामेंट की सफलता चाहते हैं तो एक साथ मिलकर सब कामों में लग जाइये। अपने उत्साह और हिम्मत के बल से प्रतिद्वन्द्वियों को बांध रोक दीजिये। और एक बार पुनः विजय वैजयन्ती फहराईये।

अन्त में मुखिया से नम्र निवेदन करता हूं कि वे स्वयं अपना दल ठीक करलें। पुराने भायी मौके पर अवश्य काम देते हैं किन्तु नये खिलाड़ियों का मार्ग न बन्द कीजिये। अपने दल में नये और विशेषतः ११ वीं १२ वीं के खिलाड़ी चाहिये। पुराने बहुत तो नयों की खेल सुधारने को रोते हैं। नई शक्ति और नया जोश असम्भव को सम्भव कर दिखाता है। पुराने यदि 'ब' दल ('B' Team) में खेलें तो थोड़े ही दिनों में

आजकल

आपका दल उन्नत तथा विजयी होगा। वर्तमान समय के गुण और दोषों पर विचार करना यद्यपि टेढ़ी खीर है फिर भी अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार मैं इस विषय पर भी प्रकाश डालने की धृष्टता करूँगा।

वर्तमान समय में गुरुकुल में कोई ऐसा goal keeper नहीं जिस पर 'अ' दल के होने का विश्वास किया जा सके। निर्धारित goalkeeper की अनुपस्थिति सम्भवतया लम्बी नहीं है फिर भी उन्हें अभ्यास की पर्याप्त आवश्यकता है। साथ २ किसी नये को जो ११वीं के हो अभ्यास करावें तो उत्तम होगा।

मुख्या महोदय स्वयं full back खेलते हैं हमें उनकी खेल का भरोसा नहीं। बाईं तरफ से आते खिलाड़ी को रोकने का अभ्यास यदि न किया गया तो सामुख्य में गोल अवश्य खाना है। आपके दूसरे साथी भी बिना देखे घुमा देते हैं। अच्छा खेल का भरोसा होते हुये भी उनकी यह आदत खराब है। ठीक मौके पर इससे धोखा खाने की सम्भावना है। Half back line में Right half चालाकी पकड़ना नहीं जानते सिर्फ हिट लगाना जानते हैं। धीरे से सरकाकर साथी को देना आगे पीछे, दायें बायें देना। Crossing hit मारना ये Half back के मुख्य कर्तव्य हैं। दम होना तो आवश्यक है ही। Left half hit नहीं लगा सकते। Right stick अत्यन्त आगे होती भिड़ते हुये उड़ते भी हैं। गेंद सदा एक ही तरफ फेंकते हैं। यदि एक साथी घिरा हुआ हो तो देखकर दूसरे साथी को दे देनी चाहिये। hit सदा Centre half के इशारों पर देनी चाहिये। गेंद छीन कर जाते हुये विरोधी को अन्त तक Hooking से तंग करना चाहिये। पीछा छोड़ना बुरा होगा। Centre half की खेल उत्तम तथा अनुकरणीय है। दुर्भाग्यवश Centre forward इतना उत्तम नहीं अन्यथा गोल करना बड़ा सुगम हो जाये। Forward line में Left extreme तो न के बराबर Right in के खिलाड़ी यदि गोले में जाकर hit मारना जान जाते तो हमारे

भाग्य जाग जाते । यदि परिश्रम किया जाय तो सब सुधार होसकते हैं। मुखिया को सुधार करने की खुली छुट्टी होनी चाहिये । Referees भी उत्तम होने चाहिये वर्तमान प्रबन्ध ठीक नहीं है । मुखिया द्वारा की गई अदल बदल दल में सबको बिना हिचकिचाहट के मान्य होनी चाहिये । जबतक हमारा दल मुखिया का मान करना नहीं सीखेगा तब तक विजयी नहीं होसकता । खिलाड़ियों के शैली के अनुसार अनियम छूट जाने पर या गड़बड़ हो जाने पर गेंद मारदेना, हल्ला मचा देना शोभा नहीं देता । खेल शान्त तथा बिना वैमनस्य के होनी चाहिये । दल की उन्नति में अपनी उन्नति समझने वाले ही उत्तम खिलाड़ी होसकते हैं। अपने यश के लिये मौके पर औरों को गेंद न देना दल के साथ ही नहीं अपितु कुल के साथ धोखा करना है। सब Forwards यदि Carry को छोड़कर Passing से खेले तो सब दोष दूर होसकते हैं । मेरे इस लेख की भूल चूकों को छोड़ते हुवे जो कुछ ठीक रहे उसे ग्रहण करें ।

हंसो यथा क्षीरमिवाम्बु मध्यात्)

इति शम्

कविता गल्प प्रतियोगिता सम्मेलन का परिणाम

गल्प

ब्र० सोमदत्त जी चतुर्दश प्रथम को
पारितोषक ६)

ब्र० विनायकराव जी त्रयोदश द्वितीय को
पारितोषक ४)

गल्प

वे दिन.

वि. विद्यानिधि A. अ अ

(१)

मै मनुष्य समाज मे रहने का शुरू से आदी नही हूं, न जाने मुझे मनुष्य समाज से स्वाभाविक ही क्यों घृणा है। इस लिये मैं प्राय. एकान्त मे ही अपने दिन व्यतीत करता हूं। मुझे एकान्त मे ही आनन्द प्रतीत होता है और इसी मे ही मेरा सुख है।

हां! वह समय मुझे ठीक याद है। जाड़े के दिन थे, खून को भी जमा देने वाली ठण्ड पड़ रही थी कि कुसुम दौड़ी हुई आई और मेरी गोद मे गिर पडी और बोली आ! मुझे भी अपने साथ लुका ले।

मैंने भी कहा – जा हर समय तो मेरे से रूठती फिरती है अब मेरे पास आई है। हाय! मैंने उस कोमलहृदया कुसुम का उस दिन दिल

दुखाया था वह मुझे आज भी नही भूलता है। सदा सोचता हूं आह! तब उस के दिल पर क्या बीती होगी। बिचारी ठिठुरती चुपचाप खड़ी थी। उस के भरणाई भरे होंठ हिल रहे थे मानों कुछ कहना चाहते हों।

(२)

कुसुम एक निर्धन परिवार की कन्यारत्न थी। मेरे घर के पीछे ही कुसुम के माता, पिता का घर था। प्रसव वेदना से कुसुम की माता मर गई। पिता चार महीने पूर्व ही मर चुके थे। बिचारी का पोषण करने वाला इस संसार में और कोई न था।

मेरी माता प्रारम्भ से ही दयालुस्वभाव की थी। उस कन्यारत्न का पोषण भी मेरी माता द्वारा ही होने लगा। जब कभी मेरी माता

के मन मे ये विचार आते कि उस अभागिनी के माता पिता कोई नहीं है तो मेरी माता उस नन्ही सी बालिका को छाती से लगा कर उस के भाग्य पर सिसक सिसक कर रोने लगती।

मैं भी रोता था और वह भी रोती थी। हम दोनो में भाई बहिन का प्रेम था क्यो कि बालयकाल से ही एक साथ पले थे और एक साथ खेले थे। माता, पिता के मन मे यह भाव कभी उत्पन्न नही हुआ कि यह अनाथ है और इसे मलिन तथा फटे वस्त्र पहिनावे और मुझे अच्छे वस्त्र पहिनावे। हम दोनों से समानता का व्यवहार किया जाता था और यही बात थी कि हम दोनों के स्वभाव में अन्तर न था। धीरे २ हम दोनो बढ़ने लगे पर इन दो हृदयो का अन्तर पास पास ही रहा और न बढ़ने ही पाया मानो विधाता ने जन्म से ही इस हृदयसूत्र को ऐसा ही बनाया था। जब मैं

उस के खिले हुवे चेहरे को देखता था तो उस समय के लिये अपने दिल की सारी व्यथा भूल जाता था।

(३)

धीरे २ मैं मदरसे जाने लगा पर सच कहता हूं कि वहां मेरा दिल न लगता था। मास्टर साहब कई बार पाठ दोहरा जानें पर मुझे पता न लगता था कि पाठ पढ़ाया भी गया है कि नहीं। मेरा मन ही कहीं अन्यत्र विचरण कर रहा होता था। हां। वहीं उस भोली कुसुम के साथ।

मदरसे में बैठा हुवा सोचता था कि कुसुम अब गुड़ियों के साथ खेल रही होगी। चलो मैं भी छुट्टी ले कर खेलने चलूं।

मैं उठ कर छुट्टी मांगता पर मुझे डांट लगती – जा, चुपचाप अपने स्थान पर बैठ। दिल तो ऐसा करता था कि इस मास्टर को अभी · । पर दिल मसोस कर रह जाना पड़ता था। अब सोचता हूं कि इस विषय में मास्टर साहब निर्दोष थे उन्हें मेरी छुट्टी मांगने का कारण ही पता न होता था।

छुट्टी होने पर दौड़ता हुआ घर जाता और रास्ते भर सोचता रहता कि जाते ही मदरसे का काम समाप्त कर निश्चिन्त हो कर खेलूंगा। पर वहां पहुंच कर सब बच्चो के बीच मे प्रधान बनी हुई कुसुम को खेलते देखता तो उस का सौम्य मुख देखते ही रास्ते के वे सारे गम्भीर भाव हवा हो जाते और मैं भी उसी क्रीड़ा में सम्मिलित हो जाता। मैं पहिले ही कह चुका हूं कि वह स्वभाव से ही बड़ी नाजुक थी। इस कारण थोड़ा

सा भी प्रहार उस के दिल पर गहरी चोट करता और थोड़ी सी भी कठोर बात कह देने पर वह रोती हुई आती और सिसकियां भर कर कहती "आ! मुझे कुछ न कहा करो। मैं जैसी हूं वैसी हूं।"

दिन मे अब मैं उसे कुछ कह देता तो वह घर के एक कोने में मुख छिपाये रोती रहती जब तक कि मैं उसे मनाने न आता। सैंकड़ों खुशामदें करवाती और अन्त में उठ कर अंगड़ाई भरे अपने नन्हे नन्हे हाथों से मेरे कपोलो पर सैंकड़ो चपतें जड़ देती और कहती "आ! क्या वह तुम ने ठीक किया था?

मेरा सिर लज्जा से नीचे झुक जाता। बस इस से आगे मैं निरुत्तर हो जाता। वह हंसती और पूछती कि अब करोगे?

सात वर्ष व्यतीत हो गये । मैं इलाहाबाद मैट्रिक परीक्षा दे कर घर वापिस आया । पड़ोस के सैंकड़ों अनजान बच्चे मेरे चारों ओर बिखर गये मानो उन को मेरे आने की खबर पहिले ही मिल गई थी । मेरे चारों ओर बच्चे ही बच्चे हो गये । यद्यपि मेरा स्वभाव बच्चों से प्यार करने का बहुत होता था तथापि मेरे मन को शान्ति नहीं थी । मेरी आंखें किसी और की ही तलाश में थी । हां । उसी भोली भाली, उसी गुड़िया खेलने वाली कुसुम की तलाश में ।

चारों ओर दृष्टि डालता था किन्तु कोई ऐसा चेहरा नज़र न आता था जिसे मैं कुसुम कह सकूं । आखिर होता भी कहां से जब कुसुम ही वहां न थी । थोड़ी देर बाद किलकारियां मारता, उछलता कूदता हुआ मेरा भाई रेन आया । उस ने न जाने किस का आंचल अपने मुख में पकड़ रखा था । इस से मैंने अनुमान लगाया कि वह मेरे ही परिवार की है । मैंने उस पर

दृष्टि डाली और उस ने मुझ पर। मैं मुस्करा दिया। उस की आंखें लज्जा से नीचे झुक गईं। मेरी आंखों के कोनों से अश्रुओं के दो बूंद गिर गये।

अहा! यह वही कुसुम थी जिस की तालाश में मेरी आंखें निश्चरण करती थक गईं थीं किन्तु उस में अब पहिले की सी चञ्चलता नहीं रही थी। चञ्चलता का स्थान लज्जा ने लिया था। वह अब गुड़ियों से खेलने वाली कुसुम न रही थी। अब उस का विवाह हो चुका था और उस का एक बच्चा भी था जिस का नाम "शशि" रक्खा गया था।

जब तक मेरी कुटिया रही तब तक मुझे कभी हिम्मत न पड़ी कि कुसुम से अब एक बार बातचीत भी कर लूं। न जाने अब कौन सा परिवर्तन उस में आ गया था जिस से मुझे भी बातचीत करने में लज्जा अनुभव होती थी।

सच कहता हू रोज मेरा दिल करता कि आज यहां से पढने जाऊं और आज ही आऊ। पर पिता का मोह मुझे छोड़ता न था। यद्यपि कुसुम की वे शैशव क्रीडाये मेरी स्मृति मे वैसी ही थी और मुझे पूरी सम्भावना है कि उस के दिल मे भी वैसी ही थी। फिर भी हम दोनो मे से किसी ने भी उन शैशव क्रीडायो के बुलाने का साहस न किया। इस मे सिर्फ लज्जा का ही व्यवधान था। फिर वे सारे दिन उसी सुकुमार 'शशि' को खिलाते, पिलाते व्यतीत होते थे। उसी पर मेरा सारा प्रेम केन्द्रित था। मुझे भी इसी पर सन्तोष था क्यो कि बच्चा भी माता की ही प्रतिकृति होती है और वह बच्चा वास्तव मे ही हृदय का धनी था।

स्वर्ग का देवता

ब्र० सूर्य प्रकाश

मैं उस 'स्वर्ग के देवता' के लिये क्या लिखूँ? रोते २ लिखूँ, या हंसते २ लिखूँ, मुस्करा कर लिखूँ या विषाद-युक्त हृदय लेकर कुछ लिखूँ? उसके गुण लिखूँ या अवगुण। वह तो 'मीठा' था। इधर से भी मीठा और उधर से भी मीठा। जहाँ से चखो. वही से 'मिठास' की झलक। कोई क्षेत्र ले लो सब से आगे मेरा 'कुलपिता'।

× × × ×

मैंने उसे देख कर भी नहीं देखा। तब तो मैं 'न' के बराबर ही था जब विद्यमान था। अब मैं कुछ बड़ा हुआ तो वह 'सर्वव्यापक' हो गया। मेरे लिये उसे 'महोत्तम अमर शहीद' के लिये - लिखना उसकी निन्दा करना ही होगा। लिखना हो तो जीवन द्वारा लिखो। पं. गुरुदत्त से किसी ने पूछा - पण्डित जी! आप 'स्वामी दयानन्द' का जीवन चरित्र क्यों नहीं लिखते?

उत्तर था कि अभी तय्यारी होने में देर है। मेरा 'जीवन' वह नहीं है। पूछने वाला चुप हो गया।

× × × ×

श्रद्धानन्द क्या था? सत्य की मूर्ति। कैसा था? पर्वत का शिखर

सागर सा गंभीर। जिधर झुकता, विश्व उधर ही। जगद्गुरु महात्मा गान्धी ने संसार को अपने चरणों में न चाहते हुए भी झुका लिया और स्वयं 'उसके' चरणों में लोट पोट हो गया। यही उसकी महानता थी, महत्ता थी, गौरव था।

× × × ×

वह त्रिभुवन था। धर्म, राजनीति दोनों उस में थी। कभी धर्म ऊपर तो राजनीति नीचे और कभी राजनीति ऊपर तो धर्म नीचे। हृदय में धर्म और राजनीति का द्वन्द्व युद्ध था। ये दोनों ही। पर हृदय फिर भी शान्त, अथाह - गुणगरिमा से पूर्ण।

× × × ×

कैसे महान रोकिये, पश्चिम की बाढ़ का?
गंगा की 'रौ' में बैठके दिखला दिया कि यों॥

मैकॉले कहता था, बस मेरी बात मान कर भारतवर्ष में उच्च अंग्रेजी भाषा का माध्यम करदो। भारत में ही पढ़े अंग्रेज पैदा होने लग जायेंगे। सारा भारतवर्ष ५० वर्षों में ईसाई हो जायेगा। उसे यह मालूम न था कि यहाँ पर अशोक की सन्तान बसती है। जिसने अपने राजत्व काल में ही थोड़े ही वर्षों में आधे संसार को भारत का अनुगामी बना दिया। श्रद्धानन्द ने शोर नहीं मचाया। हिमालय की उपत्यका में, भागीरथी के किनारे, निर्मल गगन के नीचे 'यज्ञ' प्रारम्भ कर दिया। उसका मूर्तिमान रूप गुरुकुल है।

मैकोले का निशाना चूक गया, वार खाली गया, प्रहार निरर्थक पड़ा। गंभीरता में चंचलता आ छिपी। आत्मानन्द चुपके से काम कर गया। मैकोले खड़ा ताकता रह गया। उसके दुष्ट स्वप्न-महल हृदय की उमड़; क्षणभर में - बबूला मानते ही - अनन्त में विलीन हो गई। आज गुरुकुल 'भारतीयता का नमूना' और आधुनिक भारत का शान शीर्ष है। उसकी अमर अमिट स्मृति है - चिह्न है।

× × × ×

वह आगे बढ़ता ही गया। कहीं नहीं रुका। बहुत रोका, पर वह बढ़ता ही गया। 'मानेंगे नहीं' पर उसे पीछे हटाने के बजाय उल्टे दो कदम और आगे बढ़ा गई।

× × × ×

वह शेर था, पर क्रूर नहीं - दया का अवतार। वह सागर था - पर विध्वंस करने वाला नहीं - उसका उद्देश्य था, देश जाति, धर्म, समाज और प्रत्येक व्यक्ति की सेवा करना। मनुष्य मात्र में मनुष्यत्व देखना। प्रेम का केन्द्र था - वह उसके प्रेम में संसार ओत-प्रोत था।

× × × ×

देश-भक्ति, आस्तिकता, धार्मिक-पन सब कुछ उस में था। क्या नहीं था? कुछ नहीं। मोतीभरा समुद्र था। जो चाहे ले ले। सबको मिला खुला। विश्व की विभूति था। सुधा का भंडार था। मनुष्यत्व की ऐसी सुनहरी मूर्ति था। पढ़ा लिखा नहीं पर विद्वान्-समझदार।

वृक्ष का कठोर हृ, और फूल सा कोमल हृदय था। पक्षपात से शून्य संकीर्णता से रहित विशाल। क्या कहूँ! वह सुधारक था, प्रचारक था, पण्डित था, मौलवी था। गिर्जा, मस्जिद और मन्दिर तीनों उसके लिये न थे। वह खुदा की पवित्र छाया में बैठता, कोकिलों के उर पर गाता, भागीरथी ढोल बजाती और पवन उसकी सुर-ताने और बोलती - वह तब भगवान रूप धर 'अहं ब्रह्मास्मि' - अनल-हक़' को क्रियात्मक रूप दे रहा होता।

× × × ×

उसकी मौत थी, जिसने उसे मिटा दिया - नया जन्म दे दिया। 'जिसने' बनाया 'उसी' ने मारा। लोग कहते हैं मुझे इस मौत से ईर्ष्या है।

× × × ×

उसने एक हाथ में जब अपने प्राण रखे तो आप से आप सफलता-रूपी कबूतरी से उसके हाथ पर आ बैठी। एक हथेली में प्राण हों तो दूसरी में सफलता आप से आ जाती है।

× × × ×

अन्त में 'हीरे में हीर और लालों में भी लाल' को मेरी यह श्रद्धांजलि समर्पित हो।



धर्मरक्षक

ब्र. नन्देव मित्र
(प्रथा)

"क्यों भाई तुम इतने उदास क्यों हो, तुम्हारा चेहरा बताता है कि तुम बड़ी तकलीफ में हो। लो ये १५) हैं, तुम ईसाई हो जाओ तुम्हें हम कपड़ा खाना वगैरह देंगे।" इस प्रकार के मीठे तथा लुभाने वाले वचन एक पादरी एक भंगी से कह रहा था। बात इस प्रकार हुई —।

दुर्भिक्ष का काल था। जहां तहां अन्न २ तथा पानी २ की पुकार सुनाई दे रही थी। भला इस से बढ़कर ईसाई मिशनरियों को और कौनसा सुअवसर प्राप्त होता। सर्वत्र इस प्रकार ये लोग अपने धर्म की संख्या-वृद्धि कर रहे थे। मिलनपुर गांव में आकर उपरोक्त शब्द एक पादरी ने भंगी से कहे। दुर्भिक्ष में १५) रुपये भी लुभाने वाले होते हैं। उस गांव में कई उच्च वर्ण के हिन्दु लोग ईसाई बन गये थे। दो भंगी के घर थे, उन में से एक घर के मनुष्यों ने

१५) के लोभ से ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था। दूसरे घर में एक बुड्ढा तथा एक ५ वर्ष की लज्जा नाम की लड़की तथा १३ वर्ष का हरि नाम का एक लड़का रहता था। उन्हों ने साफ २ उत्तर दिया कि जब तक तन में प्राण हैं तब तक हम अपने धर्म को नहीं छोड़ेंगे।

वर्षा ऋतु समाप्त हुई। सारी ऋतु में एक बूंद पानी न बरसा। शरद् भी सूखी २ व्यतीत हुई। ग्रीष्म के दिन आये, नदी नाले सूख गये। मिलनपुर के दो कुंवों में पानी रह गया, एक से उच्च वर्ण की औरतें पानी भरती थीं और दूसरा कुंआ पशुओं को पानी पीने के लिये था। उन नरपिशाचों ने अछूतों के लिये पानी का रास्ता भी बन्द कर दिया। दूर पर एक सरोवर था वहीं से हरि पानी भर लाता और अपने बुड्ढे को पिलाता। एक दिन वह सायंकाल तक घर पर पानी लेकर न आया। घर में पानी नहीं रहा, बुड्ढे ने पानी २ चिल्लाना शुरू किया। बिचारी लड़की भी क्या करती, पर वह थी पितृ-भक्त। लोटा ले वह गांव के कुंवे से पानी लेने चली। ज्यों ही वह कुंवे पर चढ़ी एक

जवान सोटा लेकर वहाँ आया २ आया और उसे धमकाया। पर वह गिड़गिड़ा कर बोली, माँ बाप मुझे थोड़ा पानी लेने दो। मेरा बाप प्यासा है। तुम्हें जीव दया का पुण्य लगेगा तुम्हें---- आगे कहती थी कि वह जवान उसके आशीर्वाद से क्रुद्ध होकर उस पर बुरी तरह पिल पड़ा। वह ५ वर्ष की लड़की कहाँ तक सहती, मार खाते २ बेहोश होकर गिर पड़ी। उधर वह प्यासा बूढ़ा पानी २ पुकार रहा था। उस ने परमात्मा से प्रार्थना की कि- हे देव! परम-पिता परमात्मा तू तो दीनबन्धु है, कृपालु है, दीन-रक्षक है तो फिर क्या आज तेरे ये विशेषण व्यर्थ हैं। हे कृपा-सिन्धो! हमें बचाओ। हे हिन्दुओं! क्या तुम्हारा यह अत्याचार न्याय युक्त है, क्या पशु भी हम से बढ़ गये जो उन को पानी पीने देते हो और हमें प्यासा ही मारते हो? हे देव! अरे हरि! पानी प्यास---- बस फिर आगे उसके शब्द नहीं सुनाई दिये। वह अभागा हिन्दु-धर्म को अपनाने वाला हिन्दुओं के पक्ष-पात के कारण आज पृथ्वी पर न रहा।

. . . .

रात हो जाने पर हरी वहां आया, उस बेचारे को भी किसी से छू जाने के कारण खूब मार पड़ी थी जिस से वह वहीं बेहोश हो गया था। इधर लज्जा भी जब होश में आई तब जैसे तैसे घर गई। दोनों पिता की दशा देखकर स्तब्ध हो गये। प्रथम तो भूख-प्यास की पीड़ा और मार की पीड़ा से दोनों दुःखी होगये थे, ऊपर से पिता की मृत्यु ने जले पर नमक का काम किया। दोनों हा पिता! हा हिन्दुओं! कह कर बेहोश होगये। फिर उस सारे परिवार ने दूसरे दिन का सूर्य न देखा और तीनों प्राणी हिन्दू-धर्म पर शहीद होगये।

समय का वेग बड़ा प्रबल है। इस बात को १०-१५ साल हो गये, जमाना बदल गया। सब जगह हरियाली छागई। शिवपुर भी उसी के साथ २ बदला। गांव में दो तीन घर समाजियों के होगये। उसी समय की बात है कि एक पादरी वहां पर आया, लोगों ने उस का सत्कार किया, घर में बैठाया। पुराने लोग उसे पहिचान भी गये कि यह वही पादरी है जो पहिले भंगी था। पर वह अब ईसाई बन चुका था। अब उन्हें उस में कोई दोष न दीखता था, यद्यपि वह अब गोश्त खाता था

महीनों में शायद ही स्नान करता था। जब वह उस गांव से चला गया तब एक आर्य भाई ने सब को बुला कर समाज की ओर उपदेश दिया कि भाइयो! अब आप सब हिन्दु-धर्म को भूल चुके हो। आज जो पादरी आया था वह पहिले भंगी था। आपने उस का सत्कार किया पर अपने धर्म वालों से आप सहानुभूति नहीं रखते। हमारे ही अत्याचारों के कारण एक भंगी-कुटुम्ब हिन्दु-धर्म पर शहीद हो गया। आपने उसकी कदर तक न की और एक विधर्मी को घर में बैठाया इत्यादि २। लोगों ने उपदेश का रहस्य समझा। उन के मन में यह उपदेश असर गया। वे लोग ऊंच नीच के भाव को भूल गये, सब आर्य हो गये। और जो बाहिर से मौलवी या पादरी आया, उसे भी शास्त्रार्थ में हरा कर आर्य बना लिया। सारे गांव में ऐक्य हो गया। सब भाई २ हो-कर रहने लगे। सब हिन्दु-धर्म के सच्चे रक्षक बन गये। सब लोग अपने गांव की उन्नति में लग गये। सच है कि 'संघे शक्तिः कलौ युगे'।

—:o:—



प्रणय

— वेदप्रकाशजी

प्रणय! मैं तुम्हारा क्या वर्णन करूँ? सचमुच तुम अपरिमेय हो। तुम्हारा वैभव अनन्त है। गगनचुम्बी राज-प्रासाद में, प्रस्फुटित पङ्कज-पुंज के पराग से आमोदित आराम में, मूर्तिमती रागिनी के स्निग्ध सौन्दर्य रंजित रंग-भूमि में, कविता किशोरी के मधुर पद लालित्य से रसिक साहित्य सदन में, चंचला की चपल चितवन में, मन्दाकिनी के विमल वक्षःस्थल में, प्रतिबिम्बित कमनीय कलाधर की सरस हास्यधारा में तुम अपनी विरति से विभूषित होकर सौन्दर्य की दिव्य ज्योति मध्य में, अनन्त आनन्द का प्रवर्तक होकर अपनी आनन्दमयी मूर्ति का साकार परिचय दे रहे हो।

प्रणय! जब मैं तुम्हारे मार्ग को सहज

सुलभ, सकल संसार सौख्य सौरभ और सौन्दर्य से सुसमृद्ध समझ कर उस पर अग्रसर होने के लिये प्रस्तुत होता हूँ तो रह जाता हूँ। वास्तव में प्रेम-पथ जितना सुगम है उतना ही दुर्गम भी है। वह जितना सुखमय और सरल प्रतीत होता है उतना ही दुष्कर और कठिन भी है। वह जितना विस्तृत और आनन्दमय अनुभव होता है उतना ही संकीर्ण और कण्टकाकीर्ण भी है। ~~[illegible]~~

प्रणय! यह प्रेम-पाश मृदुतम और सुकुमारतम होते हुवे भी लौह-शृंखलाओं से कठोर और सुदृढ़ है। संसार प्रणय-भाव को प्रणयी के प्रति सहानुभूति इधर उधर न मालूम किन २ मंगल कामनाओं का कारण मानता है। फिर दूरस्थ प्रेमी जन के लिये किसी व्यक्ति में अनेक शंकाओं को क्यों उत्पन्न कर देते हो?

प्रणय! तुम वास्तव में ही अगम्य हो, अपार हो। मराल मण्डित मन्दाकिनी में, कलहंस कूजित

कालिन्दी में, कांचनमयी कैलाश कन्दर में, पराग परिपूर्ण पद्म राग में, सुरभित सुर कानन में, नक्षत्र खचित कामिनी यामिनी में, सुधामयी शरच्चन्द्रिका में, तुम सर्वत्र समान भाव से विचरण करते हो। संसार तुम्हीं से अपूर्व त्याग की, समस्त गुण ग्राम-ग्राहकता की, अद्वितीय दया की दीक्षा लेता हुआ और श्रद्धेय श्रद्धा तथा भक्ति की भावुक भावना को भर करता है। तुम संसार के लिये स्वर्ग सोपान श्रृंखला की प्रथम सोपान हो।

प्रणय! चाहे संसार तुम्हें समस्त सृष्टि का मूल और आराध्य मान कर तुम्हारी पूजा करे, तुम्हें संतुष्ट करने का प्रयास करे पर मेरे लिये तुम फिर भी अगम्य हो, अद्भुत और रहस्य मय हो।

—:0:—

প্রজ্ঞানন্দ মহাঃ

२५१ [illegible]

चिट्ठी पत्री

आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब,

गुरुदत्त भवन लाहौर।

पत्र सं. ८६७६ ति. २२-८-१०८ दयानन्द / १९८९ विक्रमी

श्रीमान् पं. चमूपति जी

प्रधान गुरुकुल प्रबन्ध समिति
गुरुकुल काङ्गड़ी

श्री स्वर्गीय श्रद्धानन्द जी के बलिदान की स्मृति में श्रद्धानन्द सप्ताह मनाने के सम्बन्ध में आप से बात-चीत की थी, कि आप इसका प्रोग्राम सब गुरुकुलों तथा आर्यसमाजों में मनाने के लिये तैय्यार कर दें, आपने वह तैय्यार कर लिया हो और इस पर कार्यवाही कर रहे हैं तो कृपया सूचना दें, अन्यथा आर्यसमाजों में इस सप्ताह को मनाने के लिये मैं उचित कार्यवाही करूँ। श्रद्धानन्द बलिदान दिवस ८ पौष तदनुसार २३ दिसम्बर शुक्रवार को होगा, समय कम रह गया है अत: शीघ्र ही उत्तर देने की कृपा करें।

२५०   आजकल

श्री युत् मन्त्री जी

आर्य प्रतिनिधि सभा लाहौर

श्रीमन्नमस्ते !

आप के पत्र संख्या २६८६ सं. २२ ८/२४ के उत्तर में निवेदन है कि श्रद्धानन्द सप्ताह का प्रोग्राम तैय्यार कराके यहाँ से सीधा भिजवा दिया जावेगा और वही प्रोग्राम सब गुरुकुलों तथा आर्यसमाजों को भी भेज दिया जावेगा । आप भेजने का कष्ट न करें

हैं। तथापि उनके आदर्शों तथा कृतियों का वह पूर्ण चित्र जो आज भी भारतीय आधुनिक शिक्षा विदों में नवीन स्फूर्ति का संचार कर रहा है और आगे भी सदा करता रहेगा, इस गुरुकुल में ही दृष्टिगोचर होता है। शिक्षा के कार्य में लगा हुआ भारत बलिदान हुवे हुवे श्री स्वामी जी के प्रति ऋणी है और उनके बलिदान के दिन उनकी स्मृति में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना केवल अपनी कृतज्ञता का प्रकाशन करना है। देश तथा विदेश के आर्यसमाज न तो इस बलिदान दिवस को उस प्रोग्राम के अनुसार मनावेंगे ही जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है किन्तु देश की सभी शिक्षा संस्थाओं का कर्तव्य है कि वे अपने शिक्षा पद्धति, संस्कृति तथा सम्प्रदाय का विचार न करती हुई उस महान् शिक्षा विद के प्रति अपने सम्मान के भाव को प्रकाशित करें। जिसने हमें गुरुकुल जैसी संस्था प्रदान की जो आज सभी राष्ट्रीय विद्यालयों में मानी हुई प्रमुख संस्था है।

२-५४ 3. [illegible]

यह पत्र प्रधान जी (आ. प्र. नि. स.) को श्री आचार्य जी के द्वारा भेजा गया। २ दिसम्बर को।

श्री प्रधान जी !

सादर नमस्ते.

सेवा में सविनय निवेदन है कि हम "श्रद्धानन्द बलिदानोत्सव के उपलक्ष्य में सात दिन का ही अवकाश चाहते हैं। सभा ने इस महत्त्वपूर्ण त्यौहार के लिये केवल एक दिन का ही अवकाश स्वीकृत किया हुआ है जो कि केवल कार्यालय (office) के लिये ही स्वीकार किया गया प्रतीत होता है और ऐसा प्रतीत होता है कि सभा ने इस विषय को नहीं विचारा कि कुलपुत्र स्वर्गीय कुलपिता की स्मृति को किसप्रकार मनाना चाहते हैं पसन्द करेंगे। हम आपसे निवेदन करना चाहते हैं कि यही त्यौहार है जिस पर हमारे बहुत से functions होते हैं। वे सब एक दिन के परिमित समय में होने सर्वथा असम्भव हैं।

विद्यालय में हॉकी, कुश्ती, लम्बी दौड़ तथा अन्य भी बहुत सी खेलों के सम्बन्ध, विजय दशमी के अवसर पर ही हो जाया करते हैं। परन्तु महाविद्यालय में यह त्यौहार सत्रान्तावकाश के दिनों में ही आ जाता है, इसलिये नये

भर में ऐसा कोई शुभ अवसर हमें प्राप्त नहीं होता जिस पर इसप्रकार के सम्मेलनों द्वारा ब्रह्मचारियों को शारीरिक व्यायाम तथा अन्य शिक्षा सम्बन्धी विषयों में रुचि को बढ़ाने के लिये प्रोत्साहित किया जा सके। इसप्रकार के सम्मेलनों ~~द्वारा ब्रह्मचारियों~~ के बिना महाविद्यालय का वर्ष भर का जीवन नीरस और प्राणहीन ही रहता है, कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द अपने कुलपुत्रों की शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक और हर तरह की उन्नति चाहते थे और इसके लिये कुलपुत्रों को हमेशा उत्साहित किया करते थे। हम चाहते हैं कि उनके स्मृति सप्ताह से ही हम नवजीवन का सन्देश प्राप्त किया करें। आशा है कि सभा हमारे निवेदन पर गम्भीरता से विचार करेगी।

(2)

स्वामी श्रद्धानन्द जी की मृत्यु के बाद पहले वर्ष श्री आचार्य जी ने एक सप्ताह का अवकाश किया था, दूसरे वर्ष सभा ने यह पास कर दिया कि श्रद्धानन्द बलिदानोत्सव के उपलक्ष्य में एक ही दिन का अवकाश होगा। परन्तु

गुरुकुल में नियमपूर्वक रूप से प्रतिवर्ष लगभग एक सप्ताह का अवकाश हो ही जाया करता था। आचार्य जी सभा की आज्ञा के अनुसार एक ही दिन का अवकाश किया करते थे, (१३४५० / ३।१२।२८ के पत्र के अनुसार) परन्तु हम, उस साल में आनेवाली छुट्टियाँ उस समय न लेकर, इसी अवसर पर ही ले लिया करते थे, जिससे हमारे किसी भी कार्य में बाधा न पड़े और हम इस श्रद्धानन्द सप्ताह को भलीप्रकार उत्साहपूर्वक मना सकें। परन्तु अब भी मुख्याधिष्ठाता जी की आज्ञा के अनुसार प्रत्येक त्योहार का अवकाश उसी अवसर पर ही लिया जा सकता है किसी अन्य अवसर पर नहीं। इसलिये हमारे सामने यह विकट समस्या हो गई है कि हम किसप्रकार प्रत्य कुलपिता की स्मृति को सफल बनावें। आशा है कि सभा एक सप्ताह का अवकाश स्वीकृत करके इस समस्या को सुलझा देगी।

(४).

सब आर्यसमाजें और स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम पर संस्थापित सभायें स्वामीजी की पावन स्मृति में

निरन्तर एक सप्ताह का कार्यक्रम निर्धारित करती है। विशेषतः गुरुकुल तो स्वामीजी के प्रयत्नों का एकमात्र फल है और गुरुकुल ही उनकी भावनाओं का प्रतिरूप कहा जा सकता है। स्वामीजी की स्मृति को उत्साह पूर्वक मनाने में, अन्य किन्हीं संस्थाओं से केवल सभा द्वारा एक सप्ताह के अवकाश के स्वीकृत न होने के कारण पीछे रह जाय यह हमारे से नहीं सहा जाता और इससे हमारे हृदयों में बहुत ठेस पहुँचती है। इसलिये हम सभा से प्रार्थना करते हैं कि जिसप्रकार अन्य संस्थायें स्वामीजी की पुण्य स्मृति को सात दिन निरन्तर मनाती है उसीप्रकार हमें भी मनाने की आज्ञा प्रदान करें।

इससे स्पष्ट सूचित होता है कि सभा यह आवश्यक समझती है कि गुरुकुलों में श्रद्धानन्द सप्ताह मनाया जाए। हम सभा से प्रार्थना करते हैं कि सभा अपने निश्चय के अनुसार हमें श्रद्धानन्द बलिदानोत्सव के उपलक्ष्य में एक सप्ताह का अवकाश प्रदान करे जिससे हम श्रद्धानन्द सप्ताह को सच्चे अर्थों में श्रद्धानन्द सप्ताह के रूप में मना सकें।

(४).

श्रद्धानन्द बलिदानोत्सव के उपलक्ष में एक सप्ताह के अवकाश के लिये यह हमारा प्रथम प्रमाण नहीं है। हम प्रतिवर्ष आचार्यजी से इसके लिये प्रार्थना करते रहे हैं। गतवर्ष आचार्य जी ने इस विषय पर विचार करने के लिये उपाध्यायों की एक समिति भी बनाई थी। उसमें उपाध्यायों का बहुमत एक सप्ताह के अवकाश के पक्ष में ही था। इस वर्ष आचार्य जी ने हमें अपनी मांग सभा में उपस्थित करने की आज्ञा प्रदान की है। हम आशा करते हैं कि सभा हमारी प्रार्थना को स्वीकार करेगी, जिससे हम अपने कुलपिता की पावन स्मृति को सफलता पूर्वक मना सकें।

(५).

कई लोग कहते हैं कि आर्यसमाज के संस्थापक श्री स्वामी दयानन्द जी के निर्वाण के अवसर पर एक दिन का ही अवकाश होता है तो स्वामी श्रद्धानन्द बलिदानोत्सव पर भी एक दिन का ही अवकाश होना चाहिये इससे अधिक नहीं। इसके उत्तर में सभा में निवेदन है कि सब आर्य समाजें ऋषि दयानन्द के निर्वाण के अवसर पर एक दिन के कार्यक्रम का आयोजन

करती है परन्तु स्वामी जी की स्मृति में श्रद्धानन्द सप्ताह ही मनाती हैं। और इसके अतिरिक्त गुरुकुल के संस्थापक के तौर पर जितना हमारा अपने कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द से घनिष्ठ सम्बन्ध है उतना घनिष्ठ सम्बन्ध अन्य किसी के साथ नहीं है। और स्वामी श्रद्धानन्द जी की स्मृति आज भी वैसी ही बनी हुई है जैसी उनकी मृत्यु के एक वर्ष बाद बनी हुई थी। आज भी हमें वह विशाल काया मूर्ति हमें वैसी ही आशीर्वाद देती प्रतीत होती है जैसी पहले। इसलिये हमारे लिये इस अवसर के महत्त्व को अनुभव करते हुए आप अवश्य एक सप्ताह का अवकाश प्रदान करेंगे।

(६).

हमने श्रद्धानन्द बलिदानोत्सव के अवसर पर एक सप्ताह का अवकाश आपसे चाहा है परन्तु हमने यह अवसर इस विचार से नहीं बताया कि हमारे सप्ताह का क्या कार्यक्रम हुआ करता है। जिसको प्रेम और उत्साह पूर्वक मनाने के लिये हम एक सप्ताह का अवकाश चाहते हैं।

(७) प्रतिवर्ष श्रद्धानन्द सप्ताह के दिनों में अखिल भारतवर्षीय

श्रद्धानन्द हॉकी टूर्नामैन्ट का आयोजन किया जाता है जिसमें जिला सहारनपुर, देहरादून और अन्य स्थानों की टीमें शामिल होतीं। जिसमें विजयी दल को (श्रद्धानन्द कप) विजयोपहार, और Winners तथा Runners को पारितोषिक में पदक दिये जाते।

२. कबड्डी, लम्बी दौड़, तेज दौड़, दंगल आदि देसी खेलों के विद्यार्थियों में सम्मुख होते हैं और पारितोषिक भी दिये जाते हैं।

३. इन दिनों एक कविता गल्प प्रतियोगिता सम्मेलन भी होता है सब अच्छी गल्प और कविता करने वाले पहले दो तीन को पारितोषिक मिलता है।

४. एक अखण्ड बृहद् यज्ञ होता है जिसमें चारों वेदों का पाठ होता है और जिसकी पूर्णाहुति श्री आचार्य जी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस पर करते हैं।

५. हमने निश्चय किया है कि अछूतोद्धार के सम्बन्ध में भी कोई कार्य करेंगे।

६. श्रद्धानन्द बलिदान के दिन सारे गुरुकुल में जलूस निकलता है। स्वामी जी के जीवन के प्रत्येक पहलू पर विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के व्याख्यान होते हैं और इसी दिन रात्रि को दीपावलि भी मनाई जाती है।

७. सप्ताह भर प्रातःकाल कुलपताका का गीत भी होता है।

इस प्रकार उपरोक्त कार्यक्रम के कारण इस त्यौहार का हमारे लिये कितना अधिक महत्त्व है यह आप अच्छी तरह समझ ही गए होंगे तथा हम आशा करते हैं कि हमारी प्रार्थना को स्वीकार करलें। निराश न

मन्त्रिमण्डल के अनुभव

कुल मन्त्री

ब्र. वीरभद्र जी

कुलमंत्री जी के अनुरोध को टालना उचित न समझ कर मैं अपने गत वर्ष के कुछ अनुभव लिखने के लिये उद्यत हुआ हूं। मैंने कभी स्वप्न में न सोचा था कि कभी मुझे इस प्रकार के उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य को संभालना पड़ेगा। कुलमंत्री में जो गुण होने चाहियें उन का मुझ में सर्वथा अभाव है यह अनुभव करते हुए भी मैंने अपने कुछ सहयोगियों की प्रेरणा से इस दुस्तर कार्यभार को अपने कन्धों पर लेने का साहस किया। मैं अपने काल में कुलमंत्री के कर्तव्य को अच्छी तरह निभा सका हूं या नहीं इस पर मैं कुछ नहीं लिखना चाहता। सार्वजनिक जीवन और विशेष तथा इस उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर सार्वजनिक जीवन व्यतीत करना मेरे स्वभाव के सर्वथा विपरीत था परन्तु फिर भी आप ने मुझे आप की सेवा करने का अवसर दिया इस के लिये मैं आप का धन्यवाद करता हूं। इस पत्र में मैं गतवर्ष जो विशेष घटनायें घटित हुईं उन का वर्णन करना नहीं चाहता,

. . . .

अपि तु अपने गतवर्ष के अनुभव के आधार पर कुछ Suggestions देना चाहता हूं जिन से शायद वर्तमान कुलमंत्रियों और आगे आने वाले कुलमंत्री कुछ लाभ उठा सकें।

१- मनोहर दिन की छुट्टियां —: सब से पहले मैं मनोहर दिन की छुट्टियों के बारे में कुछ कहना चाहता हूं। साधारणतया महाविद्यालय के विद्यार्थी समझते हैं कि मनोहर दिन की छुट्टियां करवाना कुलमंत्री के हाथ में होता है परन्तु गुरुकुल के नियम के अनुसार ये पांच दिन की छुट्टियां आचार्य जी के हाथ में होती हैं और ये छुट्टियां केवल मनोहर दिनों के लिये ही नहीं होती अपि तु राजनैतिक नेताओं के मृत्यु दिवस की छुट्टियां भी इन्हीं ५ दिनों में से होती हैं क्यों कि गुरुकुल की नियमावली में राजनैतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण दिन की कोई छुट्टी स्वीकृत नहीं है। गुरुकुल की परंपराओं के अनुसार वर्ष में ५ दिन की छुट्टी कुलमंत्री के ही हाथ में होती है। इस वर्ष आचार्य जी ने कहा कि तीन दिन की छुट्टी कुलमंत्री करवा सकता है और अवशिष्ट दो दिनों की जब मैं आवश्यक समझूंगा करूंगा। परन्तु मेरी सम्मति मनोहर दिन की करवाई जाने वाली पांचों छुट्टियां

आचार्य जी की ही राय में होनी चाहिये क्यों कि बहुत बार विद्यार्थी छुट्टियां चाहते हैं परन्तु आचार्य जी नहीं देना चाहते उस समय कुलमंत्री दुविधा में पड़ जाता है और इस अवस्था में कुलमंत्री की Position बहुत खराब हो जाती है। मैं वर्तमान कुलमंत्री जी से कहूंगा कि वे मनोरंजन दिन की छुट्टी कराने का भार अपने ऊपर न लिया करेंगे इस से वे बहुत सी कठिनाइयों से बच जायेंगे।

२- उपेक्षा-: मेरा यह अनुभव है कि कुलमंत्री को सभा आदि सार्वजनिक कार्यों के प्रबन्ध के लिये विद्यार्थियों की ओर से सहायता न मिलने की तो शिकायत कभी नहीं होती परन्तु कुलमंत्री को विद्यार्थियों की ओर से यही शिकायत होती है कि विद्यार्थी साधारणतया इन सार्वजनिक कार्यों में कोई Interest नहीं लेते, इन के प्रति उपेक्षा के भाव को दर्शाते हैं।

३- कुलसभा- कुलसभाओं के बारे में मेरी यह धारणा है कि जितना हो सके उतना ही कम कुलसभा का आश्रय लेना चाहिये अर्थात् अधिकारियों से कोई कार्य करवाना हो तो उस के लिये कुलसभा में उस विषय में प्रस्ताव स्वीकार करवा कर अधिकारियों पर दबाव डालना उचित नहीं।

अपि तु कुछ विद्यार्थियों को साथ ले कर अधिकारियों से उस विषय में परामर्श कर लेना चाहिये। इस के कारण हैं - प्रथम यह कि कुलसभा में जो प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है उस को अधिकारियों से स्वीकार करवाना आवश्यक हो जाता है। अधिकारियों में और उस प्रस्ताव में अगर कोई समझौता (compromise) हो सकता हो तो उस का अधिकार कुलमंत्री के हाथ में नहीं रहता, क्यों कि अब वह विषय उस के हाथ में तरह कर कुलसभा के हाथ में चला गया है। जब तक उस समझौते पर कुलसभा की स्वीकृति न हो तब तक वह कुछ नहीं कर सकता। दूसरा कारण यह है कि कुलसभा में किसी भी विषय पर गंभीरता से विचार नहीं होता। सभासद यह नहीं विचारते कि अमुक प्रस्ताव के स्वीकार या अस्वीकार हो जाने पर हमारा उस के प्रति क्या कर्तव्य हो जाता है। हंसी मज़ाक या पार्टीबन्दी के वशीभूत हो कर किसी प्रस्ताव को स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है। इस लिये मेरा आगामी कुलमंत्रियों से निवेदन है कि जहां तक हो सके कुलसभाओं को Avoid करें।

४ कुलमंत्री -: कुलमंत्रियों से मैं यह कहना चाहता हूं कि वे केवल विद्यार्थियों के प्रतिनिधि नहीं होते अपि तु अधिकारियों और

विद्यार्थियों को भिड़ाने वाली कड़ी भी होते हैं। इस लिये उन्हें केवल विद्यार्थियों की बातों को अधिकारियों से मनवाने का ही प्रयत्न न करना चाहिये परन्तु इस के साथ ही साथ उन्हें अधिकारियों की उचित बात भी विद्यार्थियों से मनवानी चाहिये। साधारणतया यह समझा जाता है कि कुलमंत्री विद्यार्थियों की ओर से अधिकारियों के साथ लड़ने वाला ही होता है। मेरी सम्मति में कुलमंत्री के बारे में यह विचार अशुद्ध है और इस का कारण यह है कि कभी किसी कुलमंत्री ने अधिकारियों की बात विद्यार्थियों से मनवाने का प्रयत्न ही नहीं किया। और अगर कोई ऐसा करता भी है तो उसे लोगों के तानों का शिकार होना पड़ता है और वह एक असफल कुलमंत्री समझा जाता है।

५- भण्डार —: आचार्य जी ने मुझ से कहा था कि तुम स्वशासन कायम करने का प्रयत्न करो। मैंने कहा कि भण्डार और क्रीड़ा का प्रबन्ध हमारे ही हाथ में होता है, इन दोनों क्षेत्रों में हमें आप ने स्वशासन ही दिया हुआ है, परन्तु मैं अनुभव करता हूं कि हम इन दोनों क्षेत्रों के स्वशासन में भी सफल सिद्ध नहीं हुए। भण्डारी जी के आदेशों का कोई मान नहीं करता। अपना भाई समझ कर हमें उस की सहायता करनी चाहिये परन्तु बहुत से भाई उस को नौकर समझ कर डांटते हैं

. . . .

जो बहुत ही अनुचित है। जो व्रती भण्डारी जी की सहायतार्थ विद्यार्थियों की सेवा करते हैं उन के बारे में कहा जाता है कि वे सब की माखन खाने के लिये ही खड़े हुए हैं। जब मैं महाविद्यालय में आया था उस समय भण्डार की दशा और आजकल की भण्डार की दशा में बहुत अन्तर है। यह सब हमारी त्रुटियों और दोषों का परिणाम है। मैं सब भाइयों से ज़ोरदार शब्दों में कहना चाहता हूं कि इस ओर ज़रा ध्यान दें और अपने कर्तव्य को समझें।

क्रीड़ा — : अन्त में मैं क्रीड़ा के बारे में भी कुछ कह देना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि हमारी क्रीड़ा में किसी न किसी अधिकारी को अवश्य आना चाहिये। मैं यह केवल इस लिये नहीं चाहता उस के आने से विद्यार्थियों में उत्साह का संचार हो या क्रीड़ा के प्रति शौक पैदा हो; अपि तु अधिकारी के आने से क्रीड़ा में कोई विद्यार्थी हंसी मज़ाक में औचित्य और सामान्य शिष्टाचार का अतिक्रमण कर जाते हैं, अब न कर सकेंगे।

मेरे ये विचार बहुत से भाइयों को बुरे लगेंगे और बहुत से भाई कहेंगे कि जहां तहां हमारी स्वतन्त्रता में बाधा डालना चाहता है। परन्तु मैं क्या करूं, मेरे ऐसे ही विचार हैं।

मैं इस जीवन में अधिक स्वतन्त्रता को हानिकर समझता हूं। मेरे ये विचार मेरे कुछ एक अनुभवों के परिणाम हैं। आप इन को उपयोगी समझ कर कार्यरूप में लायेंगे तो अच्छा, नहीं तो आप की इच्छा।



क्रीडा मंत्री

ब्र. देवकीर्ति जी.

५८-३३ के क्रीडा विभाग के मंत्री मंडल का चुनाव ३० दिसम्बर को हुआ। जिसमें ब्र. देवकीर्ति प्रादेशिक मन्त्री और ब्र. गुरुदेव १२ उपमन्त्री चुने गये।

आनन्द सप्ताह के बाद क्रीड़ा मन्त्री के विशेष कार्य नहीं होते क्यों कि वार्षिक परीक्षा पास आजाने से नियमपूर्वक खेल खेल नहीं होती तथापि इस साल सर्दियों के सत्र में काफी खेला हुई। परीक्षा से एक महीना पूर्व ही खेल बन्द रही शेष महीनों में नियमपूर्वक खेल होती रही। इस सत्र अन्तः प्रान्तीय हॉकी सामुख्य तथा अन्त महाविद्यालय वॉलीबाल के सामुख्य हुए। और अन्तः कोष्ठी वॉलीबाल सामुख्य हुआ जिसमें चतुर्दश विजयी रहा।

उत्सव के अवसर पर इस साल छोटे ब्रह्मचारियों की देशी खेलों का भी प्रदर्शन कराया गया। उत्सव के पश्चात् पुनः खेल प्रारम्भ हुई, परन्तु गर्मी की अधिकता के कारण देर तक खेल न हो सकी। इसी समय मसूरी टूर्नामेन्ट के निकट आजाने के कारण

फिर 'अ' तथा 'ब' दल के खिलाड़ियों ने खेलना प्रारम्भ किया। अब कुछ ऐसा स्वभाव सा पड़ गया है कि टूर्नामेन्ट से कुछ दिन पहले थोड़ा अभ्यास कर गुरुकुल दल खेलने चला जाता है यद्यपि इस स्वभाव को हटाने का पूर्ण प्रयत्न किया गया परन्तु फिर भी कुछ अंशों में यह अभी तक विद्यमान है। इसी के परिणामस्वरूप मसूरी की हार हुई। यद्यपि इसके अतिरिक्त मसूरी में हारने के अन्य कारण भी विद्यमान थे। आगामी जनवरी मास में मेरठ में Hornet tournament होने जा रहा है। यदि भावी क्रीड़ा-मन्त्री जी इसमें अपने दल को भेजना चाहें हमारी उनको यह सलाह है कि अभी से इसका निर्णय कर लें कि दल ने वहां जाना है या नहीं। निश्चय हो जाने पर खिलाड़ी अपने उत्तरदायित्व को ख्याल में रखते हुए अवश्य खेलेंगे। इसके विपरीत होता यह है कि अन्तिम समय तक न मुखिया को और नाहीं क्रीड़ामन्त्री को यह पता होता है कि दल ने जाना है या नहीं।

मसूरी टूर्नामेन्ट से पहले गुरुकुल में सर्वदल आया था जिसे गुरुकुल ने पराजित किया। इसके अतिरिक्त देहली से हाकी तथा पादकन्दुक के दल आये जिनमें गुरुकुल दल का खेल उत्तम समझा गया।

मसूरी की हार के पश्चात् पुनः नये जोश से खेल का प्रारम्भ हुआ परन्तु इस वर्ष Grounds के ठीक न होने से खेल

उत्तम प्रकार से न होसकी। इन्हीं दिनों दीर्घावकाश का प्रारम्भ होगया।

सत्रान्तावकाश की समाप्ति पर अजमेर में होने वाले दयानन्द निर्वाण शताब्दी महोत्सव में होने वाली खेलों में भी गुरुकुल ने भाग लिया। गुरुकुल की हाकी का खेल बहुत पसंद किया गया। यद्यपि गुरुकुल दल D.A.V College से पराजित हुआ परन्तु खेल गुरुकुल दल की ही उत्तम थी। वहां पर वालीबाल में भी गुरुकुल ने भाग लिया जिसमें गुरुकुल दल पराजित हुआ। वहां की खेल देख कर यहां अभ्यास किया गया था परन्तु पुरानी प्रवृत्ति के अनुसार शीघ्र ही अभ्यास अन्त होगया। इसी समय सहारनपुर में Six a side Hockey Tournament में भाग लेने के लिये गुरुकुल दल गया।

इसी समय अखिल भारतीय श्रद्धानन्द टूर्नामेन्ट समीप आगया। इस वर्ष गुरुकुल के Grounds बहुत खराब थे, वर्तमान Ground बहुत परिश्रम के पश्चात् मिला तथा तय्यारी का समय बहुत थोड़ा था। इसी थोड़े समय में टूर्नामेन्ट के लिये दल को भी तय्यार करना था तथा Ground को भी। क्रीडाक्षेत्र बनने की कोई भी उम्मेद न थी परन्तु भाई गणपति के उत्साह तथा अन्य भाईयों के सहयोग से नियत समय में क्रीड़ाक्षेत्र बन कर तय्यार होगया। इस समय खेल भी नियमपूर्वक होती रही। आशा है इस टूर्नामेन्ट में भी गतवर्षों की भांति गुरुकुल दल ही विजयी रहेगा।

हमने इस वर्ष खेल उन्नत बनाने का अपनी ओर से पूर्ण प्रयत्न किया इसमें हम कहां तक सफल होसके हैं इसका निर्णय आप स्वयं कर सकते हैं। परन्तु हम जो चाहते थे वह क्यों न कर सके? उन कारणों पर भी भी कुछ विचार करना आवश्यक है।

गुरुकुल के इस मृतप्राय वातावरण में किसी भी क्षेत्र में उन्नति होसकना मुश्किल ही नहीं अपितु असम्भव है। किसी भी सभा या उत्सव में भाग लेने में अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं। यही हालत खेल की है। यद्यपि खेल की हालत उतनी शोचनीय नहीं जितनी अन्य विभागों की है। यही कारण है कि हमें जितनी आप सब के सहयोग की भी आशा थी - जिसके बिना हम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते थे - उतना सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। प्रत्येक कार्य के लिये कई २ बार बुलाने पर भी कुछ ~~कुछ~~ उपस्थिति ही दृष्टिगोचर होती थी। क्या हम आशा करें कि आप आगे जिस सुयोग्य व्यक्ति को इस पद पर बिठायेंगे उसके साथ पूर्ण सहयोग देंगे।

इसके अतिरिक्त खेल में उन्नति न होसकने का कारण व्यवस्था का न होना है। बाहर अगर आप किसी दल को देखें तो वे मुखिया के पसीने के स्थान पर अपने खून को बहाने को उद्यत रहते हैं। इसका उदाहरण हर जगह मिल सकता है परन्तु हमारे यहां मुखिया को कुछ नहीं समझा जाता वह एक गेंद सम्भालने वाला नौकर है। बाहर टूर्नामेंट में जाने पर वह तांगा आदि लाने के लिये है। यदि

हम मुखिया की खेल सम्बन्धी सब आज्ञाओं को मान कर खेला करें तो हमारी खेल में बहुत उन्नति हो सकती है तथा हम ठीक व्यवस्था (Discipline) में रहना भी आजायगा।

इसके साथ ही हम क्रीड़ामन्त्री या मुखिया के कहने पर नियत समय पर क्रीड़ाक्षेत्र में उपस्थित नहीं होते इसे समय तो हो करना हमारा स्वयंसिद्ध अधिकार है। यदि हम नियत समय पर क्रीड़ाक्षेत्र में स्वयं उपस्थित होजाया करें तो हमारी उन्नति होसकती है। हमें इस बात की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये कि क्रीड़ामन्त्री या मुखिया जब तक बुलाते नहीं आयेंगे तब कमरे में ही बैठे रहेंगे।

अन्त में मैं दो तीन शब्द मीठे या कड़वे जो कुछ हैं लिख देना चाहता हूं। जब मैं इस पद पर आया था बड़ी आशाओं को लेकर आया था। दिल में बड़ा उत्साह था तथा कुछ नयी चीज कर डालने की जी चाहता था। इसके लिये कई बार परिश्रम भी किया, पर परिश्रम करने पर सब व्यर्थ गया। अब कुल मुर्दा हो रहा। किसी भी Activity को करना पसन्द नहीं करता। मेरी इच्छा थी कि इस साल खिला खिला कर एक अच्छी Team तय्यार करूंगा। इसके लिये खिलाड़ियों से खेलने के लिये प्रतिज्ञा भी कराई गई थी पर कुल के इस ऋतु में 2-3 दिन में ही यह प्रतिज्ञा पता नहीं कहां काफूर होगई। और कोई न कोई कप जीत कर लाने की इच्छा भी दिल की दिल में रह गई। भाइयो अब तो जो कब तक पितरों के माल को खाते रहोगे।

वाग्वर्धिनी मंत्री

ब्र. शिवकुमार जी

गुरुकुल महाविद्यालय की सभाओं का मन्त्री या उपमन्त्री होना कोई कठिन काम नहीं। कोई भी व्यक्ति जो कि सभा आदि के संचालन में अधिक दिलचस्पी से भाग लेता है वह बिना किसी विशेष अनुरूप किसी सभा का मन्त्री बना दिया जाता है। मन्त्री का चुनाव होता है किन्तु उम्मेदवार केवल एक ही होता है। चुनाव हो जाने के बाद सदस्यों का मन्त्री की सहायता करना या न करना उनकी अपनी इच्छा पर निर्भर होता है। दिल में आई तो सहायता कर दी नहीं तो मन्त्री को ही लद्दू बैल की तरह सारी सभा का कार्यभार अपने ऊपर उठाना पड़ता है। मन्त्री का पहला कार्य यह होता है कि वह सप्ताह में सभा का एक साधारण अधिवेशन करवा दे, मन्त्री अगर चुस्त होतो वह अपने कर्तव्य को पूरा कर देता है। घंटी बज चलती है, लेकिन सभा के लिये एक बार प्रबन्ध करने में बड़ा खटता है, लेकिन सभा में केवल इने गिने सदस्य ही पहुंच पाते हैं। साधारण अधिवेशनों के अतिरिक्त मंत्री को कुछ विशेष अधिवेशन भी करवाने होते हैं, इन अधिवेशनों का निर्णय सभाओं की कार्यकारिणी, जो कि सदस्यों द्वारा निर्वाचित होती है - के द्वारा होता है। अगर कोई नवीन अधि-

वेशन हो तब तो सदस्य भाग लेते हैं; पर वह भी उत्साह से नहीं, और यदि किसी पुराने अधिवेशन को दुहराया जाय तो उसकी भी अवस्था शोचनीय होजाती है, शिकायत यह होती है कि "यह अधिवेशन तो पिट चुका है"। और अगर शिकायत करने वालों से पूछा जाय कि 'तो फिर कौन सा अधिवेशन किया जाय?' इस पर कुछ सदस्य तो हवाई किले बनाना शुरू कर देते हैं और कुछ चुप्पी साध लेते हैं; पर फिर भी टीका टिप्पणी करते ही रहते हैं। परन्तु अगर कोई लगन वाला मंत्री हो तो वह इन बातों से हताश नहीं होता, वह तो अपना कर्तव्य पालन किये जाता है, चाहे उसकी कोई सहायता करे या न करे।

सभा विषयक उदासीनता के अनेक कारण हैं।

सबसे पहला कारण यह है कि गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के छोटी श्रेणी के विद्यार्थियों में सभा आदि की ओर कोई विशेष रुचि नहीं होती और नाही अधिकारियों की ओर से ध्यान दिया जाता है। इस समय शायद वहां पर कोई सभा हो, लेकिन हमें याद है कि हमारे समय तो वहां पर सभा विषयक वायुमंडल का सर्वथा अभाव था। दूसरा कारण हमारी सम्मति में यह है कि महाविद्यालय में सभा भवन का कोई विशेष प्रबन्ध नहीं है और सबसे मुख्य कारण यह है कि महाविद्यालय की सब से बड़ी श्रेणी इस काम के लिए आगे

लेती है। हमारी सम्मति में महाविद्यालय की १४वीं कॉलोनी का महा-
विद्यालय की प्रत्येक Activity में बड़ा ज़बरदस्त असर होता
है। दूसरी कॉलोनियां तो उसी का अनुसरण करती हैं। अगर वह
सभा आदि में बड़े उत्साह से भाग लेती है तो उनको देखादेखी
दूसरी कॉलोनियों में भी उत्साह का संचार होता है। अगर १४वीं
कॉलोनी इस विषय में गंभीर न हो तो दूसरी कॉलोनियों से गंभीरता
की आशा करना हमारी सम्मति में व्यर्थ है। हमारा तो विश्वास
और यह विश्वास अनुभव के आधार पर है कि १४वीं कॉलोनी ही
सारे महाविद्यालय के वायुमण्डल को सुधार और बिगाड़ सकती है।
परन्तु यह भी ठीक है नहीं कि इतने बड़े महाविद्यालय में कुछ काम
देखादेखी हो. वस्तुत: महाविद्यालय के हर एक विद्यार्थी को सभा
आदि के लिये अपना कुछ कर्तव्य समझना चाहिये। इसके बिना
महाविद्यालय का कोई भी काम चलना अत्यन्त कठिन हो।

राष्ट्र प्रतिनिधि सभा (ब्र. वेदव्रत जी)

इस वर्ष की गुरुकुलीय राष्ट्रप्रतिनिधि सभा मेरे लिये वास्तव में एक अभूतपूर्व और आश्चर्यजनक घटना थी। जब मैं घण्टा बजने के बाद सभाभवन में पहुंचा तो ऐसा प्रतीत होता था कि राष्ट्रप्रतिनिधि सभा इस वर्ष के लिये स्थगित कर दी गई है। कुछ देर बाद दूर से सभापति जी आते दीख पड़े। सभाभवन के पास आ कर वे भी ठिठके रह गए। कम से कम १० मिनट तक उन्हें भी बाहर खड़े रहना पड़ा कि कोरम के लायक तो सदस्य आ जायें। सभापति जी का बयान था कि "मैं आया तो देखा कि राष्ट्रप्रतिनिधि सभा एकदम निराधार है।" वास्तव में इस बार राष्ट्रप्रतिनिधि सभा ऐसी ही थी। प्रारंभ से ले कर अन्त तक एक ही किस्सा है। पिछले सत्र तो पार्लियामैंट हो न सकी थी और कहा जा सकता है कि इस सत्र भी बहुत न हो सकी। साहित्य परिषत् के मंत्रीजी को चिन्ता थी कि कहीं मेरा वर्ष रीता ही न चला जाये अतः उन्हों ने हाथ पैर पटक कर प्रधान मंत्री और विरोधी दल के नेता तय्यार किये। उन के सिर से तो बला टल गई अब प्रधान मंत्री और विरोधी दल के नेता की आफत थी। जैसे तैसे बिल भी पेश कर दिया गया। विरोधी दल के नेता ने बड़े उत्साह से अपना मत भी जुटा लिया। पर "Man ~~prapposes~~ proposes but God disposes

'अपने मन कछु और है विधना के कछु और'। गुरुकुल के विधना तो हमारे महाविद्यालय के विद्यार्थी ही ठहरे। उन की तबियत नहीं लगी तो प्रधानमंत्री और विरोधी दल के किये कराये पर पानी फिर गया। दोष किस का है - कहना कठिन है। हमारी प्रवृत्तियां ही कुछ ऐसी हो गई हैं कि हम पढ़ने से अवकाश तो बार २ चाहते हैं पर [illegible] करना कभी नहीं चाहते। पार्लियामेंट तो शिक्षा का एक अंग है। उस के लिये दो दिन तक आवश्यक महाविद्यालय बन्द रहता है। सदस्यों के लिये विद्यालय और कार्यालय सभी जगह अवकाश रहता है। पर हम इस सब का क्या महत्व समझते हैं - उस का ज्वलंत प्रमाण इस वर्ष की पार्लियामेंट है। प्रारंभ में दो एक सदस्यों ने विप्रतिपत्तियां उठाने में रस दिखाया। फिर दो एक भाषणों को जनता ने ध्यान से सुना। चौथे भाषण तक यह हाल हो गया कि सदस्यों की गिनती करनी पड़ी और कुछ देर बाद सभा को बर्खास्त करना पड़ा। क्यों? क्यों कि सदस्य कोरम से भी कम रह गये थे। एक तो है कोरम और वह भी पूरा नहीं होता। Holyday mood की भी हद हो गई। अन्ततः मैं सभापति जी को बातचीत कर के

इस वर्ष के लिये पार्लीमैंट बन्द करनी पड़ी ताकि आगे के लिये विद्यार्थियों का ध्यान इस ओर जाये। जायेगा या नहीं सो देखा जाये। इस घटना के पीछे अनेक कारण हैं। पार्लीमैंट का भूत हर एक अन्य Activity की जड़ में लगा ही रहता था। पर फिर भी सबसे बड़ा कारण हमारे वायुमण्डल की साधारण उदासीनता [illegible] पड़ता है। हम किसी भी बात की गंभीरता को नहीं लेते। आशा है हम अब भी चेतेंगे और अपनी इस दुर्दशा को दूर करेंगे

संस्कृतोत्साहिनी (पं. बलदेव जी)

जब कुलमंत्री जी ने मेरे से संस्कृतोत्साहिनी सभा के भूतपूर्व मंत्री के हैसियत से अनुभूत अनुभवों के लिखने को कहा उस समय मेरे सामने विगत रातों का सारा दृश्य एक २ कर के सामने आने लगा, मेरे दिल में बड़ा हर्ष हो रहा था कि वे अनुभव जिन्हों ने अब तक मेरे दिल में स्थान जमाया हुआ था, अब दूसरों के सामने भी प्रकट करने का अवसर मिला है। एतदर्थ कुलमंत्री जी को धन्यवाद।

इस सभा की याद आते २ तीन दृष्टिकोण सब से प्रथम मेरे सम्मुख आते हैं। इन में मैंने सभा के कोष पर ज्यादा विचार नहीं किया क्योंकि बिना कोष के भी यदि कोई सभा निम्न तीन बातों पर पूरा ध्यान देती है तो उस का काम बिना कोष के भी चल सकता है ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

१- साधारणाधिवेशन —: प्रति सप्ताह नियम पूर्वक एक साधारणाधिवेशन ज़रूर होना चाहिये। यदि प्रारंभ में केवल तीन ही सभासद उपस्थित हों तब भी सभा के अधिवेशन को स्थगित नहीं कर देना चाहिये, विद्यार्थियों को भी चाहिये कि वे अपने आप को सभा का एक मुख्य अंग समझ कर उस की मर्या

शक्ति सहायता करें । एक बार मुझे इसी सभा के एक प्रतिष्ठित सदस्य जी ने पूछने पर बताया कि 'हम क्या बतायें ? हमारे समय तो केवल १५ या २० विद्यार्थी ही उपस्थित होते थे। पर आजकल तो ६० विद्यार्थियों में से यदि १० भी उपस्थित हो जाते हैं तो वह अधिवेशन सफल समझा जाता है। अतः विद्यार्थियों का तो यही कर्तव्य है कि वे इस सभा में तन और मन से सहयोग दें।

२-विशेषाधिवेशन- जन्मोत्सव पर किसी मनोरंजक रचना विभाग (Programme) का रखना आवश्यक है, नहीं तो थोड़ी देर में ही हड़ताल प्रारंभ हो जाती है। प्रतिभा सम्मेलन, कविदरबार, शास्त्रार्थ आदि भी वर्ष में एक बार हो जाने चाहियें। यदि प्रत्येक मास के चतुर्थ सप्ताह में उत्तम वक्ताओं का एक test बिना इनाम के हो जाया करे तो बहुत उत्तम रहेगा।

देवगोष्ठी - इस सभा की ओर से एक मुख्य पत्रिका भी प्रति मास निकला करती है जिस का नाम देवगोष्ठी है। पहले की पत्रिकाओं के देखने से पता चलता है कि विद्यार्थी इस में बहुत Interest रखते थे। विद्यार्थियों के भिन्न २ विषयों

पर तैक्ष लाखों अत्युत्तम श्लोक उसमें पाये जाते हैं। किन्तु आज कल तो केवल वे ही प्रस्ताव पत्रिका में दिये जाते हैं जो कि परीक्षार्थ उपाध्याय जी को देने पड़ते हैं। कई बार तो उन को भी केवल उतार देने में विद्यार्थी आलस्य करते हैं। कविताओं का तो कहना ही क्या! यदि विद्यार्थियों के परिश्रम को ज़बर्दस्ती से किसी कोल्हू में पीस दिया जाये तब जा कर श्लोकों की दो तीन बूंदें दर्शन देती हैं। विद्यार्थियों को श्लोकों की ओर भी काफी Interest रखना चाहिये। यदि रात दिन मनोविनोद का समय मिल सकता है तो थोड़ा समय इधर लगाने से भी कोई हानि नहीं होती।

आशा है मेरे भाई इन विचारों पर पर्याप्त ध्यान देंगे।

आयुर्वेद परिषद् (वै. शुभकर ?)

दो एक साल से जहां पर कि अन्य सभायें उन्नति की ओर पग बढ़ा रही हैं वहां पर आयुर्वेद परिषत् भी अपने पूर्वरूप को लाने में भरसक प्रयत्न कर रही है।

गतवर्ष के अनुभवों को मैं क्या लिखूं उस को तो सब सदस्य भली प्रकार जानते हैं पर उन के होते हुए भी दो एक बातें, जिन की तरफ आयुर्वेद परिषत् को अग्रसर होना अत्यन्त आवश्यक है, लिखता हूं।

सामाजिक जगत् में प्रवेश करने के लिये यह उचित है कि प्रत्येक वैद्य को कुछ न कुछ लिखना और बोलना आता हो। छोटे से विषय को ले कर अच्छा भाषण दे सकता हो, रोगों की बुराइयों तथा अच्छाइयों को बता सकता हो। इस लिये यह आवश्यक है कि ब्रह्मचारी पाक्षिक या मासिक अधिवेशनों में किसी रोग को ले कर भाषण दें। इस से जहां पर विद्यावृद्धि होगी वहां पर उत्तम भाषण देना भी आ जायगा।

एक साल से आयुर्वेद महाविद्यालय का कोई भी आचार्य न होने से ब्रह्मचारियों को आयुर्वेद संबन्धी बातचीत करने में

प्यारा रहता है इस लिये नवीन मंत्री जी को आचार्य जी से प्रार्थना करनी चाहिये कि वह किसी योग्य वैद्य को (Doctor को नहीं) इस पद के लिये नियुक्त करें।

पत्रिका निकलवाने का शौक प्रत्येक आयुर्वेदपरिषद् के सदस्य को होता है परन्तु लेख मांगने पर नहीं का जवाब या समयाभाव आदि को सुन मंत्री के हृदय को अत्यन्त चोट पहुंचती है इस लिये प्रत्येक सदस्य को चाहिये कि मंत्री के कार्य में पूर्ण सहयोग देना अपना कर्तव्य समझे।

१९३३ में रिखवाये गये प्रस्तावों के परीक्षक यहां के प्रोफेसर रखे गये थे। परन्तु एक साल हो गया अब तक कोई परिणाम न निकला। इस का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि यहां के प्रोफेसर ब्रह्मचारियों को उत्साह शून्य करते हैं। उन का तो यह पहला कर्तव्य होना चाहिये कि वे ब्रह्मचारियों की उन्नति में अपनी भी उन्नति समझें। इस लिये मेरी समझ में प्रस्तावों के निर्णायक नवीन स्नातक या आयुर्वेद महाविद्यालय के उत्साही स्नातक ही रखे जाया करें जिस से शीघ्रातिशीघ्र परिणाम निकला करे।

कालेज यूनीयन (श्री ओम प्रकाश से)

'Necessity is the mother of invention.'

आवश्यकता आविष्कारों की जननी है। यह एक जगद्विख्यात कहावत है। लोक व्यवहार में आवश्यकतानुसार अनेकों आविष्कार होते हैं और आवश्यकता के न रहने पर – ठीक २ कहा जाय तो – यों कह सकते हैं कि आवश्यकता के अनुभव न किये जाने पर वे स्वयं ही कराल काल के ग्रास हो जाते हैं।

यही अवस्था हमारी College Union Club की है। आज से १५, २० साल पहले अंग्रेजी भाषण में नैपुण्य की आवश्यकता का अनुभव किया गया। परिणामभूत इस Club की उत्पत्ति हुई। जिस का बुढ़ापा जल्दी आता है उस की जवानी भी जल्दी आती है। सभा दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति से उन्नति पथ पर अग्रसर हुई। जल्दी ही यौवन मद से मद झूमने लगी। अन्य सहेलियों का यौवन इस के सामने फीका पड़ गया।

दीया बुझने के लिये ही एक बार अतुल प्रकाश से प्रदीप्त होता है। इस सभा का कई साल तक कुछ पता न चला। College में जब प्रवेश किया तो सुना करता था कि College Union Club भी कोई Club है। उस का एक मंत्री भी होता है। एक साल के

अर्से में इस के केवल दो नैमित्तिक अधिवेशन देखे जिन पुराने मंत्रियों ने अस्तीफा दिया और नयों का चुनाव हुआ।

तीसरा नैमित्तिक अधिवेशन हुआ। ब्र: वेदव्रत जी मंत्री और ब्र मधुसेन जी उपमन्त्री चुने गये। धन्वन्तरि तुल्य मन्त्री जी ने संजीवन बूटी सुंघाई। सभा में कुछ २ चैतन्य आया। मंत्री जी के सतत परिश्रम से अब इस के साधारण अधिवेशन होने लगे। कुछ संख्या में सदस्य हिस्सा लेने लगे। यह था १९४९ का प्रथम सत्र।

साल का दूसरा सत्र आया। सभा ने धीमे २ औंघे लेने आरंभ किये। आखिरकार निद्रा ने धर दबाया। समय बीतते देर नहीं लगती। १९४९ बीत गया और १९५० का प्रारंभ हुआ। Club का नैमित्तिक अधिवेशन हुआ। इस में मैं मंत्री चुना गया और ब्र. हरिकृष्ण जी द्वादश उपमंत्री। उपमंत्री जी को सत्र भर रोग ने आक्रान्त रखा। इस सत्र सारा बोझ मेरे ही कंधों पर रहा।

शुरू २ में बड़ा उत्साह था। भार को भार न समझा। सोचा था पत्रिका प्रकाशित करूंगा। पत्रिका के साथ २ धन का ध्यान आया! यह युग तो धन का युग है। Union के पास फूटी कौड़ी भी न थी। सोचा मांगूं, पर हाथ पसारने की हिम्मत नहीं; कई

बार दिल कड़ा किया, दिल को तसल्ली दी, कोई अपने लिये कौड़ी ही मांगता है। आगे बढ़ा, जीभ लड़खड़ा गई। पैर पीछे पड़ने लगे। आखिर? आखिर होता क्या? एक भी पैसा चन्दा न हुआ।

साधारणाधिवेशन हर सप्ताह होते रहे। प्रयत्न करने पर भी सदस्यों की संख्या विशेष न बढ़ी। कोई १२, १३ सदस्य आने लगे। कुछ समय बाद English में भाषण कराने को सोचा। उपाध्यायों के पास अनेक बार गया पर सभा के अन्त तक एक भी भाषण न हुआ। केवल एक, सो भी अजमेर के एक प्रोफेसर का था। संस्कृत के ड्रामे की सुना; सोचा, एक ड्रामा इंगलिश का भी कराया जावे। यहां पर भी असफलता देवी ही सिर ऊँचा रहा, कुछ लड़कों के तय्यार होने पर भी उपयुक्त ड्रामा प्राप्त न हो सका। इस प्रकार विशेषाधिवेशनों का विचार भी नष्टभ्रष्ट हो गया। इस समय साधारणाधिवेशन की भी कम सिद्धि प्रतीत न हुई। सिवाय एक सदस्य तथा मंत्री के कोई भी सभा को यथोचित स्थान पर न पहुंचा।

इन सब बातों को देख कर मैंने विचार किया कि इस सब का क्या कारण है? इस का मेरे दिमाग ने यह उत्तर दिया कि

आविष्कार तभी तक उपयोगी होता है जब तक उस की आवश्यकता का अनुभव किया जाय जिस के लिये वह उत्पन्न होता है। कोई भी इंगलिश में वक्तृता तथा योग्यता की आवश्यकता अनुभव नहीं करता, इस लिये एतदर्थ आविष्कार निष्फल है। यह सोच विचार मैंने अपने शेष मन्त्रित्व काल में किसी भी प्रकार का अधिवेशन नहीं कराया।

यद्यपि लेख को पढ़ने से ही स्पष्ट हो जाता है कि इस को किस प्रकार उन्नत किया जा सकता है, फिर भी इस को एक दो शब्दों में बता कर अपने लेख को समाप्त कर देना चाहता हूं।

संक्षेप में यों कहा जा सकता है कि यदि हम इसे पुनरुज्जीवित करना चाहते हैं तो सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि हम इस बात को अनुभव करें कि अंग्रेज़ी में योग्यता की अत्यन्त आवश्यकता। साथ में हम ऐसा अनुभव कर के यदि इस सभा का सञ्चालन भी करें तो भी विशेष फायदा न होगा यदि हम अंग्रेज़ी के भाषण न सुनेंगे। इस प्रकार इसे जीवित जाग्रत रखने के लिये इसी तरह उपाध्यायों के अंग्रेज़ी में भाषण सुनें तथा समय २ पर ड्रामा और प्रहसन आदि करते रहें।

अपने विषय में

सात दिन का सबकार.

जिस प्रकार पुल पर आई जलधारा अपनी पुरानी शक्ति का संचय कर आगे को बहती है, उसी प्रकार मनुष्य शक्ति को पुनर्जन्म देने के लिये त्यौहार मनाये जाते हैं। ठीक यही महत्त्व मैं श्रद्धानन्द-सप्ताह का समझता हूँ। और वह जिस भी शान से मनाया जाय, थोड़ा है। अगर इस की महत्ता में किसी को सन्देह हो, तो वह इसी पत्रिका में दिये गये 'श्रद्धानन्द सप्ताह को कैसे मनाया जावे आदि विस्तृत विवरण, आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री द्वारा प्रकाशित से जान सकता है। उस प्रोग्राम की तैयारी भी किस परिश्रम से की गई है, यह भी पाठक प्रतिनिधि सभा के मन्त्री तथा मुख्याधिष्ठाता श्री चमूपति जी की बातचीत से जान सकते हैं। सर्वमान्य विषयों में युक्तिवाद की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि वे सब को स्पष्ट होते हैं। अतः मैं भी एक दो बातें और कह कर आगे चलता हूँ। भूतपूर्व श्री कुलमन्त्रियों द्वारा निरन्तर 6 वर्षों तक किये गए प्रयत्न भी कम प्रामाणिक न होंगे जो कि श्री आचार्य जी की

~~इस प्रकार से~~ सेवा में हर प्रकार से प्रार्थना निवेदन आदि करते रहे।

अगर यह विषय कम महत्व का होता तो श्री आचार्य जी मुझे यह कदापि न कहते कि तुम भी कहीं अन्य कुलमन्त्रियों की तरह इन श्रद्धानन्द सप्ताह की छुट्टियों के लिए श्रद्धानन्द सप्ताह के गुज़र जाने पर लापरवाही न करना। यह बात जिस दिन हुई थी उसी दिन ही नहीं किन्तु उसी क्षण मेरे दिल को लग गई और वहीं इस बात को मैंने अपनी गाँठ में बांध लिया कि और इस विषय में इतना जागरूक हो गया जितना कि शिष्य को गुरु के आदेश पर जागरूक या चैतन्य होना चाहिये। इसी प्रसंग में यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि श्री आचार्य जी उस समय ६ छुट्टियों के पक्ष में न थे।

मैंने इस विषय को सोचा और फिर सोचा। कितना मनन किया यह मैं ही जानता हूँ। २ दिन तक तो ६ दिन की छुट्टियाँ नहीं होनी चाहियें इसी पर एकान्त में विचार करता रहा पर अन्त में मेरे हृदय और मस्तिष्क ने ऐलान कर दिया कि ६ दिन से एक दिन की भी कम छुट्टी होना श्री श्रद्धानन्द जी की आत्मपूजा के तथा गुरुकुल ही नहीं सारे आर्यसमाज की शान के विरुद्ध है। मेरे ये विचार अब भी

पत्थर की चट्टान से भी कहीं अधिक दृढ़ हैं।

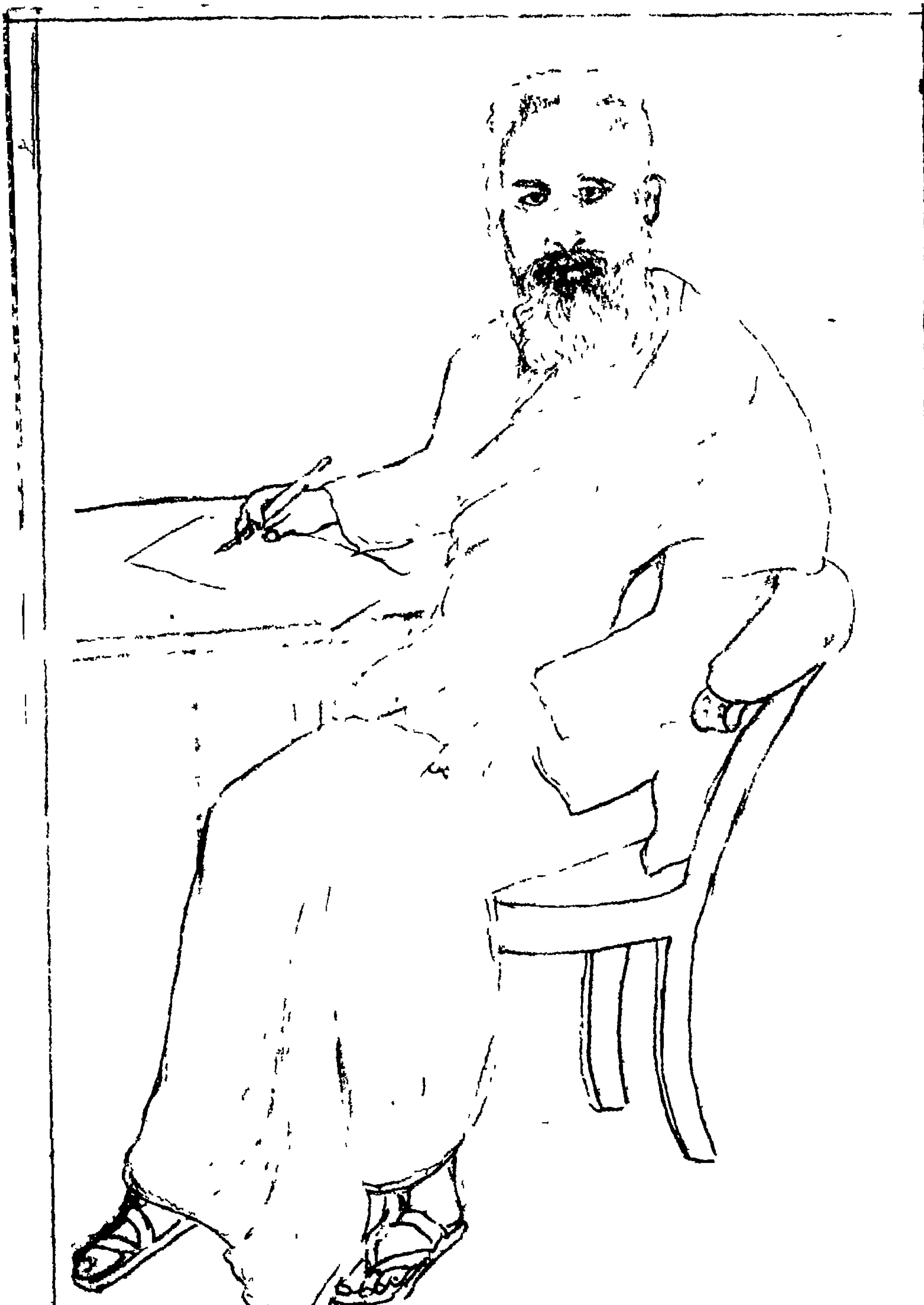
जिस प्रकार इस विषय में मैं विचार कर रहा था, उसी प्रकार अन्य भाई भी विचार और मनन कर रहे होंगे। जिस सब का परिणाम कुलसभा कही जा सकती है। कुलसभा का विषय हो जाने पर भी मैंने अपनी ओर से सिर से एडी तक ज़ोर लगाया कि किसी प्रकार 6 दिन की छुट्टियों का प्रस्ताव स्वीकृत होना चाहिये। अनेक भाइयों का इस प्रकार का सिद्धान्त है कि कुलमन्त्री को तटस्थ रहना चाहिये पर मैं यह समझता हूँ कि कुलमन्त्री को सत्य और अहिंसा पर दृढ़ रहना चाहिये, उस के लिये पदत्यागना तो बहुत ही मामूली चीज़ है। सत्य और अहिंसा जान दे कर भी मोल ले लें तो सस्ते हैं और अपनी आवाज़ को दबाना असत्य बोलना तथा हिंसा करना है। इसी सिद्धान्त के कारण मैं तटस्थ न रह सका और न भविष्य में भी रहना पसन्द करता हूँ। अगर कई भाइयों के इस प्रकार के विचार हैं कि उस के (कुलमन्त्री के) प्रभाव में आ कर उसके पलड़े को भारी कर दिया जाता है तो उस भारी बोझ को उठाने की ज़िम्मेवारी भी उसी के कन्धों पर आती है। इसी सिलसिले में एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि कुलसभा से स्वीकृत प्रस्ताव पर अमल करना उस सभा के

प्रत्येक सदस्य का, और उस से भी अधिक मेरा, कर्तव्य है; चाहे वह किसी की इच्छा के अनुकूल हो या प्रतिकूल।

मैं चाहता तो इस वर्ष भी इस सप्ताह की छुट्टियों के विषय को टाल सकता था क्योंकि ५ दिन का अवकाश तो उस समय भी हिसाब लगाने से स्पष्ट मिलता दीख रहा था पर मेरे जगाने वाले ने ऐसा स्वार्थसाधने के लिए रोक दिया था और यहाँ तक कहा था कि इस प्रकार के विचार आत्मिक पतन के होते हैं, उत्थान के नहीं। बस, इसी सत्यता के आधार पर मैंने इस विषय को कुल सभा के हाथ सौंप दिया और अपने को आत्मिक पतन से बचा भगवान को धन्यवाद दिया।

अन्त में यही बात और जो अधिक आवश्यक है, लिखकर अपने विचारों को समाप्त करता हूँ। कई इस प्रकार के भी विचार रखते हैं कि कार्य धीरे २ करना चाहिये क्योंकि किसी ने कहा भी है— 'कारज धीरे होत है, काहे होत अधीर।'

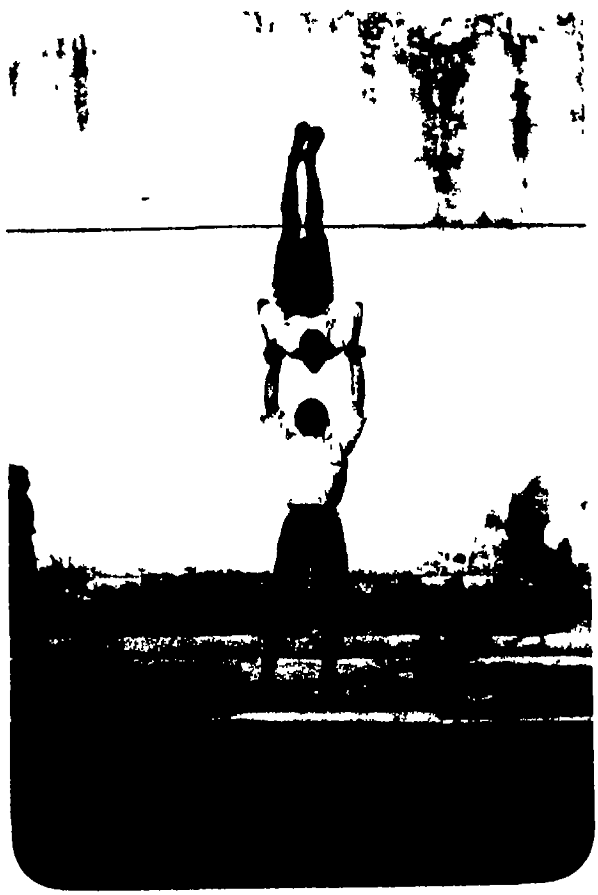
मैं उपर्युक्त सूक्ति को अक्षरशः मानता हूं और स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि जिस रफ़्तार से कार्य हुआ है, उस से और धीमे न हो सकता था क्योंकि 'शुभस्य शीघ्रम्।' की सूक्ति को भी मैं आंखों से ओझल नहीं करना चाहता था तथा इस सुअवसर को भी मैं हाथ से न खोना चाहता था। इसी कारण और अधिक धीरे २ न कर सका।



সম্পাদকীয়

हड़ताल की नौबत.

यह लिखते बड़ी प्रसन्नता है कि कुलसभा के प्रस्ताव के अनुसार हमें हड़ताल कराने तथा करने की नौबत नहीं आई। कई भाइयों का यह विचार है कि प्रस्ताव के अनुसार अभी हड़ताल होनी चाहिये पर हम उन्हें स्पष्ट कर देना चाहते हैं, जब कि हमारी पूरी मांगों को (जो कि हम ने पेश की थीं) हमें दे दिया गया तो फिर उस की क्या आवश्यकता रहती है? दूसरे कुलसभा ने कुलमन्त्री को यह अधिकार दे दिया था कि यदि वह अन्तरङ्ग सभा द्वारा ६ दिन के अवकाश के अस्वीकृत हो जाने पर उस हड़ताल के प्रस्ताव को श्री आचार्य जी की सेवा में भेज दे, अन्यथा नहीं। ऐसी स्थिति में हमें हड़ताल करना या करवाना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि सभा ने तो ६ दिन की छुट्टी को अस्वीकार किया ही नहीं। अगर वह ६ दिन के अवकाश को अस्वीकृत करती तो अवश्य ही हड़ताल की नौबत आ जाती। परन्तु हमारे सौभाग्य से तथा भगवान् की कृपा से ऐसी स्थिति नहीं आयी, इस के लिये हम श्री आचार्य जी का हृदय से धन्यवाद करते हैं।



क्रीडा पर

श्री क्रीडामन्त्री जी से प्राप्त १९३३ की खेल की रिपोर्ट को पढ़कर एकबार दनादन स्टेशन पर स्टेशन छोड़ती हुई डाक गाड़ी की कलम सहसा किसी आकस्मिक घटना के समान रुक सी जाती है। वास्तव में घटना भी असाधारण व बड़ी मन पर एक ठेससी लगाने वाली है। और उस बात को लिखने का मन भी नहीं करता पर कर्तव्य से च्युत होने के भय से कुनीन की गोली सा उसे शीघ्रता से निगलही लेते हैं — "वह है हारों का वर्ष"

पाठक इतने से ही समझ गये होंगे जहां २ भी इस वर्ष हाकी दल गया वहां वहां ही मुंह की खानी पड़ी। मेरठ, मसूरी तथा अजमेर की कौन कहे यहां लोहमार फैसला गुरुकुल में ही होगया — यह दुःख और मानभङ्ग की पराकाष्ठा है।

श्री क्रीडामन्त्री जी के लेख विश्लेषण करने से हमें निम्न कारण मुख्य २ ज्ञात हो गये हैं। —

१. वातावरण का मृतप्राय होना --- ऐसी संस्था में जहां (कुमत्यर्पण ...... मृत्युमुपादनत:) की घुट्टी पिलाई जाती हो वहां मृतप्राय होने से बढ़ कर कोई अधिक हमारे लिये अवनति की बात हो भी नहीं सकती।

२ प्रतिपक्षी का मान —— जिस समाज ने प्रतिपक्षी का मान करना नहीं सीखा वह समाज शिक्षित है ऐसा कहना सत्य की हिंसा करना है। हमारे लिये कितनी लज्जा की बात है कि प्रतिपक्षी को अनेक बार गेन्द संभालने वाला नौकर तथा टूर्नामेण्ट के मौके पर तांगा लिवा लाने वाला हरबंश समझते हैं। अब तो हमें चेतना चाहिये सो बहुत लिये।

३. नियमित तौर पर खेल का न होना — यह बात भी कम ध्यान देने की नहीं। सुनते हैं कि नैपोलियन ५ मिनट में सारा साम्राज्य खो बैठा था फिर जहां हम आध घण्टा देर करें तो वहां विजय प्राप्त करना के स्वप्न को लिये भी नहीं रहता।

४. सहयोग का अभाव —— शिकारी के हाथ बड़े जाल

को जब कबूतरों को संघशक्ति मिलकर उड़ासकती है तो मनुष्य क्या नहीं करसकता। यह विचारणीय विषय ही नहीं होता।

इन थोड़े से कटु शब्दों को प्रदर्शिनी वालों की तरह कुलभाइयों को अवश्य ही लेलेना चाहिये नहीं तो किन बीमारी के बढ़ जाने का अधिक भय है। हम श्री रूीडामन्त्री जी की प्रशंसा किये बिना नहीं रहसकते क्यों कि उन्हों ने इन मुर्दों में जान फूंकने का भी जान से प्रयत्न किया है। जहां देखो वहां वे अपना नाम पेश कर देते थे। अन्त दिन कुश्ती के दंगल में उन्हें उतेर२ बचाने में प्रयत्न करने पर भी न रोकसके। अत: प्रान्तीय कबड्डी में तो वे आधी समाप्त होने पर भी जांघिया कसे आये थे। हम जानते हैं वे किसी आशा से आये थे पर उनकी बड़ी फुटबाल में सुधबुध खोकर हम ने छिड़ा कर दिये। अगले भावी श्री क्रीडामन्त्री जी ऐसे कटु अनुभव न होने दें। ऐसा हमारा कर्तव्य है पर साथ में यह भी निवेदन करदेना

चाहते हैं साम्राज्य को संघठित करने के लिये जिस प्रकार किनारों से लगाना पड़ता है उसी प्रकार हमें भी विजयी होने के लिये उन   से लगाना पड़ेगा अन्यथा नहीं।

मैदान बनाते हुए जो दुश्वार उन्हें आया था वह ~~[illegible]~~ थकान का ही तो परिणाम थी

राष्ट्र प्रतिनिधि सभा पर

राष्ट्र प्रतिनिधि सभा के शरत्कालीन अधिवेशन के बारे में प्रधान मन्त्री जी की रिपोर्ट आप अन्यत्र पढ़ चुके होंगे। प्रधान मन्त्री जी को इस बात का बहुत अधिक दुःख है कि इस वर्ष अधिवेशन सफलता पूर्वक नहीं मनाया जा सका। उन का विचार है इस का कारण विद्यार्थियों का इन विषयों के प्रति अत्यधिक उपेक्षाभाव है। हमारी सम्मति में प्रधान मन्त्री जी का यह कारण बिलकुल बहुत अंशों तक ठीक ही है। गत वर्ष और इस से पहले भी इस अधिवेशन के लिए विद्यार्थी खूब तय्यारियां किया करते थे और अधिवेशनों के दिनों में सब की जबान का विषय पार्लियामेण्ट ही रहती थी। जब कभी सूचना पट्ट पर किसी दल का घोषणा पत्र प्रकाशित होता तो विद्यार्थियों का

जब कर जमा हो जाया करता था। मन्त्री मण्डल और विरोधी दल के नेता बड़े उत्साह से अपने २ दलों के संघटित करने में प्रयत्नशील होते थे। दोनों दलों की ओर से अपनी २ नीति को स्पष्ट करने के लिए कुछ पत्र पत्रिकायें भी प्रकाशित हुआ करती थीं और अधिवेशन में भी सब पर जाहिर थे किसी प्रकार से हमारा दल विजयी हो और इस के लिए सब अपने २ दल की ओर से अधिक से अधिक भाषण तय्यार करते थे। राष्ट्र प्रतिनिधि सभा के पहले दिन का दृश्य तो दर्शनीय ही होता था जब कुल के सभासद एक दम खड़े हो कर 'ऑर्डर' का उल्लंघन कर भाषण करने की आज्ञा प्राप्त करने की अभिलाषा प्रकट करते थे। परन्तु इस बार इन सब का एक दम अभाव था, इस का कारण विपक्षियों का उपेक्षाभाव नहीं तो क्या है? हमारी सम्मति में इस उपेक्षाभाव का सारा दोष सभा

सदस्यों के लिए नहीं पड़ता चाहिए क्योंकि सभासदों में राज्य प्रतिनिधि सभा के प्रति Interest और उत्साह को पैदा करना बहुत कुछ प्रधान मन्त्री और विरोधी दल के नेता के हाथ में होता है। पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित करवाना प्रधान मन्त्री और विरोधी दल के नेता का ही काम होता है। इस बार किसी पत्र पत्रिका के प्रकाशित न होने का ही परिणाम था कि बहुत से सभासदों को इतना तक न मालूम था कि विरोधी दल इस बिल का किस दृष्टि से विरोध कर रहा है। इस बार भी कुछ सभासदों ने बिल के पक्ष और विपक्ष में भाषण देने की तय्यारी की थी, परन्तु अधिकांश सभासद् इस के प्रति उदासीन ही रहे। इस लिए प्रधान मन्त्री जी को पहले अधिवेशन उपस्थिति की न्यूनता को देख कर बहुत दुःख हुआ और कोरम पूर्ण न होने के कारण अधिवेशन स्थगित हो जाने पर प्रधान मन्त्री जी ने अपना बिल भी लौटा लिया। प्रधान मन्त्री जी यदि चाहते

तो अपना अधिवेशन ही सफल था। हमारी सम्मति में उन्होंने अच्छा ही किया कि फिर लौट लिया। क्योंकि जब सभासदों में इस के लिए उत्साह ही नहीं है तो इस को अधिक खींचने का क्या लाभ ?

सभाओं पर

१. सभाएं प्रत्येक शिक्षा संस्था का आवश्यक अंग होती हैं और उन का उस में एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। सभाओं के वर्ष भर के कार्य को देखने से ज्ञात हो जाता है कि उस शिक्षणालय के विद्यार्थियों में कितना जीवन है। इस के एक अंक में गुरुकुल महाविद्यालय की सब सभाओं के मन्त्रियों द्वारा प्रेषित अपनी २ सभाओं की रिपोर्ट प्रकाशित करवाई है। इन सब में मन्त्रियों का एक ही रोना है। हमें वह रोना फिर यहां नहीं रोना है। हम केवल सब भाइयों से प्रार्थना करना चाहते हैं कि आप के द्वारा निर्वाचित मन्त्रियों की आय के बारे में. यह सम्मति है। सब मन्त्री अपने मन्त्रित्व काल के प्रारम्भ

में नवीन उत्साह से कार्य करते हैं और चाहते हैं कि किसी प्रकार इस गुरुकुल के शान्त और मृत-प्राय जीवन में स्फूर्ति का संचार कर दें परन्तु आप की उदासीनता और उपेक्षा उनके उत्साह को भी मन्द बना देती है। बिचारे निराश हो जाते हैं। यतियों ने जो कुछ लिखा है वह केवल लिखने के लिए ही नहीं लिखा परन्तु यह उन के हृदयों के उद्गार हैं तथा उनके कटु अनुभवों के परिणाम हैं। हमारे इस लेख का यह प्रयोजन है कि आप अपनी अवस्था को समझें। धोखे में न रहें। झूठे गौरव में अपनी वास्तविक अवस्था को न भूल जायें। आशा है कि आप यतियों की प्रार्थनाओं की ओर ध्यान देंगे और महाविद्यालय के मृतप्राय वातावरण में नव जीवन संचार करने का प्रयत्न करेंगे।

बृहद् यज्ञ.

इस बार श्रद्धानन्द-सप्ताह पर बृहद् यज्ञ का न करने का कारण केवल यही ~~नहीं कि वर्षा होनी~~ है कि कहीं वर्षा हो गई तो वह गरीब किसानों की खेतियों को अकालवृष्टि के कारण नष्ट कर देगी, जिस से पवित्र पुण्यमय यज्ञ अज्ञान के कारण हिंसात्मक सिद्ध हो जाय, अतः उसे असमय बुलाना अनुचित जान कर ऐसा नहीं किया गया॥

Group-making.

केवल यही एक खेल है, जिसने हमारे कुल की शान को अजमेर में बचाया ही नहीं, अपितु बढ़ाया है। हम व्यायाम शिक्षक श्री नारायण जी को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते, जिन्हों ने इतनी लगन के साथ यह शिक्षा दी।

तकली-दल.

इस छोटे से संगठित दल की सफलता हम हृदय से चाहते हैं। भगवान् की कृपा से तथा ब्रह्मचारियों के परिश्रम से यह दल उन्नति को ही प्राप्त होगा, ऐसी आशा करनी चाहिये।

श्रद्धानन्द पुस्तक.

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का व्यक्तित्व कितना महान् था यह लिखने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने अपने जीवनकाल में सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक आदि सभी क्षेत्रों में कार्य किया। कोई भी ऐसा समाजहितकारी कार्य न था, जिस में उन्होंने हिस्सा न बटाया हो, और अपने अलौकिक गुणों के कारण उस के अगुआ न बन गये हों। परन्तु दुःख का विषय है कि ऐसे महान् व्यक्तित्व वाले कर्मठ

त्यागी और वीर पुरुष के प्रामाणिक और शोचक जीवन-चरित का अब तक हिन्दी-जगत में सर्वथा अभाव था। हमारे सौभाग्य से पं० सत्यदेव जी विद्यालंकार ने हिन्दी जगत् की इस कमी को दूर किया है। पं० जी की लेखन शैली के बारे में तो कुछ कहने का हम अधिकार ही नहीं रखते। पं० जी ने जिस योग्यता से इस ग्रन्थ को लिखा है, यह बात पाठक पुस्तक पढ़ कर ही हृदयङ्गम कर सकते हैं। अपने इस ग्रन्थ द्वारा पण्डित जी ने हमारे कुलपिता और आचार्य की स्मृति को अमर बनाने का प्रयत्न किया है, इस के लिये हम उन का हृदय से धन्यवाद करते हैं।

ऋतु —

आजकल ऋतु बहुत सुहावनी है। प्रातःकालीन शीतल समीर स्वास्थ्य को बढ़ाने वाली तथा प्रसन्नता को देने वाली होती है। महाविद्यालय के ब्रह्मचारी पूर्व वर्ष की तरह नहर की पटरी पर प्रातः घूमते नज़र आते हैं। ग्रीष्म का अब नामोनिशान ही मिट गया है और शीतकाल अपने यौवन की पूर्ण कला पर चढ़ता सा नज़र आता है।

स्वास्थ्य —

मलेरिया जो कि इस वर्ष ज़ोरों से फैला था और जिसने कइयों को घर दबाया था तथा प्रायः सभी को ढीला कर दिया था, अब नज़र नहीं आता। चिकित्सालय भी अब खाली ही है; कुछ मामूली बीमार हैं। पुरानी बीमारी से छूटते हुए भाई सुभाषचन्द्र जी को हम हृदय से बधाई देते हैं। भाई मधुसूदन जी को भी, पेट की बीमारी के आक्रमण के दूर हो जाने पर हम हृदय से बधाई देते हैं।

छोटे ब्रह्मचारियों में से ४-५ को मम्पस की बीमारी है, जो कि चिन्ताजनक नहीं है।

श्रद्धानन्द हॉकी सान्मुख्य (१९३३)

श्रद्धेय कुलपिता की पुण्य स्मृति में जिस "श्रद्धानन्द हॉकी सान्मुख्य" का आयोजन किया गया था वह प्रतिदिन उन्नति पथ पर चलता जा रहा है। हर वर्ष सान्मुख्य में कुछ न कुछ नवीनता होती ही जाती है। पुरानी त्रुटियों को दूर करने की कोशिश भी क्रीडामन्त्री तथा खिलाड़ी करते हैं। बाहर से ~~टीम~~ दल (team) बुलाने की कोशिश की जाती है। इस बार अन्य वर्षों की अपेक्षा अधिक तथा अच्छी टीमें बाहर से आई हैं। बाहर से आने वाली सभी टीमें अच्छी थीं। हमारे गुरुकुल की 'A' team जिन खिलाड़ियों से सहारनपुर, मेरठ आदि में हार जाती थी वे भी इस बार अधिक संख्या में उपस्थित थे। अर्थात् इस बार का टूर्नामेंट टीमों की दृष्टि से ~~बहुत~~ पर्याप्त सफल रहा है।

२९ नवम्बर को सान्मुख्य का प्रथम दिन था। इस दिन रीति के अनुसार केवल एक ही मैच का आयोजन था। गुरुकुल 'A' तथा Y.M. club 'B' में मैच शुरू हुआ। जनता भी बहुत थोड़ी थी। मैच जनता के लिये बिल्कुल मनोरञ्जक न था। Y M club 'B' को गुरुकुल दल ने ४ गोल से हरा दिया। इसके बाद ३० नवम्बर को दो मैचों का आयोजन किया गया। प्रथम मैच ३ बजे R.S club Saharanpur तथा Y M club Hardwar में आरम्भ हुआ। ये दोनों Teams लगभग मुकाबले की ही थीं। Y M club वास्तव में गुरुकुल की 'C' team ही थी। मैच काफी मनोरञ्जक था। Y M club के खिलाड़ियों का हाथ उस दिन खूब जमा। R.S club उनके आक्रमणों को न सम्भाल सकी। ~~इसके फलस्वरूप~~ में आखिर खेल समाप्त ~~होते होते~~ तक Y.M.club ने ३ गोल चढ़ा दिये। दर्शकों तथा प्रतिद्वन्द्वी खिलाड़ियों ने समझा कि यह वास्तव में गुरुकुल की 'A' team है नाम 'C' रख दिया है। R S club ने विचारी उसी दिन ११ बजे आई थी। अतः खेलते भी ढंग से न खेल पाई थी कि अतः:

सायंकाल उन्हें पुनः बाधक पड़ गये।

इसके बाद द्वितीय मैच Gurukul 'B' तथा Edward High School मे 6-15 पर प्रारम्भ हुआ। गुरुकुल दल को इस टीम से जीतने की आशा न थी क्योंकि इसमें 3, 4 खिलाड़ी Marsh Union के थे जिन्होंने कि गुरुकुल की 'A' team हरा कर आई थी। Edward High School के भी खिलाड़ी गर्व से ठिकाने न थे। आते ही पूछते हैं कि क्यों ब्रह्मचारी जी? "आपकी 'B' Team उस 'A' Team से अधिक अच्छी तो नहीं है जिसे कि हमने मेरठ में 3 गोल से जीता था।" हमने सोचा कि इन्हें अपनी खेल का बहुत घमण्ड है खेल में ही बतायेंगे कि यह कमजोर है कि strong है। खेल प्रारम्भ हुआ। जनता भी खूब आई हुई थी। Edward High School गुरुकुल दल B को जो मामूली का दल समझता था खेल बराबर होता हुआ। शुरू में तो Edward High School ने बड़ा जोर मारा परन्तु कुछ न बना। 'B' Team के सभी खिलाड़ी बहुत अच्छा खेल रहे थे परन्तु Half time समाप्त होने से कुछ पहिले उन पर एक गोल चढ़ गया जिससे 'B' दल के खिलाड़ी घबराये नहीं। Half time के बाद एकदम गोल उतार दिया। गोल उतरते ही दूसरी पार्टी घबरा गई। गुरुकुल दल ने इन्हें इतना रगड़ा कि उन्हें सदा खतरा रहने लगा कि कहीं अब गोल चढ़ ही न जावे। Edward के खिलाड़ी भी जी जान से खेलने लगे परन्तु वहां तो 'B' दल आगे बढ़ने ही न देता थी। जनता भी उछल उछल कर शाबाश दे रही थी। खेल समाप्ति से 5 मिनट पहिले गुरुकुल दल के Back के पास एक free ball आई। दर्शकों का शोर हो ही रहा था। उस शोर में Full back को ऐसा धोखा हुआ कि सीटी बज रही है वह गेंद को रख कर रुक गया। सोचा कि इतने में उसी दल के Forward ने गेंद छीन कर सीधी गोल में डाल दी। Referees ने गोल को ठीक बता दी। यह गोल 'B' दल से उतार न सकी और उस दिन अपने दुर्भाग्य को कोसने लगी। यह मैच बहुत मनोरंजक रहा। इसके मुकाबले का मैच final के सिवाय और कोई न हुआ।

इसके बाद मंगलवार को उसके Youngs Union Saharanpur

तथा ज्वालापुर महाविद्यालय में उसका मुकाबला हुआ। ज्वालापुर महाविद्यालय को अपना खेल दिखाने में बहुत प्रयत्न करना पड़ा। उनका खेल अभी टूर्नामेंट में खेलने योग्य न था। Youngs Union भी क्या करते। जब [illegible] प्यारे [illegible] उन्हें [illegible] में रखें तो फिर और से भागे [illegible] भी काहे न करें [illegible] हो जाये और, एक तो [illegible] का [illegible] फिर उस पर आन का [illegible] गोल होने को [illegible] देता। बहुत [illegible] के बाद [illegible] में Youngs club ने [illegible] रखा और उन्हें 2 गोलों से हराया। ~~मैच~~ ४ यह मैच [illegible] तथा [illegible] उनके ज्वालापुर के विद्यार्थियों को हिम्मत न हारनी चाहिये। खेल का आधार इन्हें टूर्नामेंट लायक अवश्य बना रहा है।

इसके बाद दूसरा मैच Union Club-Saharanpur तथा G. M. club 'A' में हुआ। G. M. club सहारनपुर में बहुत प्रसिद्ध नाम है। G. M. club के खिलाड़ी बहुत अच्छे खेले, ये अब जोरों [illegible] फिर भी मुकाबिला अच्छा हुआ। G. M. club 'A' ~~का~~ defence में ~~[illegible]~~ [illegible] रही। कभी कभी गेंद दूसरी तरफ भी चली जाती थी। इस प्रकार बहुत देर बाद G. M. club ने प्रतिद्वन्द्वियों पर एक गोल चढ़ा ही दिया। यह खेल काफी मनोरंजक हुआ।

इस के बाद रविवार को केवल एक ही मैच हुआ। यह मैच गुरुकुल 'A' तथा Y. M. club में हुआ। 'A' दल को आशा थी कि हम इस club को अच्छी तरह हरा लेंगे। शुरू में तो 'A' Team बड़ी शान से खेली परन्तु पीछे उन्होंने अनुभव किया कि Y. M. club भी मट्टी के माधो नहीं हैं, वे यों ही जीतने देंगे। खेल जोर से शुरू हुआ। 'A' Team की लाइन Half time से आगे गेंद बढ़ती थी परन्तु फिर भी कोई गोल न बना। 'A' Team को लगा रहा को — [illegible] पड़ता था कि Y. M. club को हरा दें। Half time तक कोई परिणाम न निकला। इस के बाद इधर half time के भी [illegible] मिनट गुजर गये परन्तु गोल की कोई सूरत नजर न आई। 'A' Team भी पूरी कोशिश से भी [illegible] आखिर किसी तरह 1 गोल चढ़ाया। Y. M. club को इसके गोल देने से [illegible]

चाहते ही थी। इसके बाद 'ए' team का साहस बढ़ गया। इसके बाद दूसरा गोल और फिर तीसरा गोल भी चढ़ गया।

इसके बाद आखिरकार को R K Medical College Hardwar तथा Saharanpur Estate Team में जबरदस्त मुकाबला हुआ। R K Medical College का खेल ज्यादातर की केवल दो आदमी होते नहीं जा सकती है। इस बार सहारनपुर की टीम भी उतनी अच्छी न थी जितनी कि पिछले साल थी। उनके 2-3 अच्छे खिलाड़ी कहीं बाहर गये हुये थे। खेल काफी अच्छा हुआ। सहारनपुर ने R K Medical college को 1 गोल से हरा दिया। दूसरा मैच Edward High School Muzaffarnagar तथा Y.M club में हुआ। ये दोनों teams अच्छी खेलने वाली थी। दोनों teams ने अन्त तक fair game खेली। Y M club के forward अच्छे खिलाड़ी न थे इसलिये दूसरी टीम पर गोल की आशंका कम थी। परन्तु Edward High School के forwards तथा ~~पिछली लाइन~~ पिछले सारे खिलाड़ी अच्छे थे। उनमें Centre Halfback साबिक की खेल बहुत ही अधिक अच्छी थी। इसके मुकाबिले का खिलाड़ी सारे टूर्नामेंट भर में कोई न था। यह बहुत ही अच्छा खेलता था इसकी खेल का अनुकरण अवश्य करना चाहिये। Edward High School की सारी खेल को इसने control किया हुआ था। Y.M club बहुत ज्यादा मातहती पर रक्षा करती थी। इनके forwards को गोल की आशा न रही थी। वे बीच में बार बार घूम रहे थे। इससे Halftime में Edwards ने Y M club पर 4 गोल चढ़ा दिये।

इसके बाद Semi-final शुरू हुये Gurukul 'A' तथा Saharanpur का मैच प्रारम्भ हुआ। ~~इसमें~~ यह खेल ~~काफी~~ बहुत Rough ~~[illegible]~~ हुआ। शुरू के 5 मिनटों में ही गुरुकुल ने विपक्ष पर 1 गोल चढ़ा दिया। इसके बाद खेल खूब जोश में हुआ। गुरुकुल दल भी आखिर प्राचीन काल से खेलता आ रहा है। इससे Half time में दूसरा गोल भी चढ़ गया। दर्शकों को इस खेल से बहुत खुशी हुई। थोड़ी देर बाद खेल समाप्त की सीटी बजाई और खेल समाप्त हो गया।

तीसरा मैच Edwards High School तथा Youngs में हुआ। Youngs ने Edward High School की खेल देख ली थी इस लिये

उन्होंने अपने खिलाड़ी बदल लिये। मैच प्रारम्भ हुआ। Youngs बहुत ही जोश से खेल रहे थे। उनमें बड़े हट्टे कट्टे जवान थे जिनके धक्कों के सामने Edward High School की कमजोर आयु वाली टीम क्या ठहर सकती थी। परन्तु फिर भी सफाई की खेल के आगे यह पहलवानी कुछ काम नहीं देती। Edward school वालों ने तथा सफाई से खेलता रहा। ~~[illegible]~~ प्रारम्भ में गेंद Youngs वालों की तरफ ही रहती थी। थोड़ी देर में Edward के Right in ने बड़ी सफाई से एक गोल कर दिया। Youngs देखते रह गये। Half time के बाद फिर खेल शुरू हुआ। खेल दूसरे Half में समतुलित रही। दोनों तरफ गोल होने की आशंकायें होती थीं। दोनों पार्टियों के खिलाड़ी जान लगा कर खेल रहे थे। अन्तिम समय में Youngs के खिलाड़ी आगे बढ़ आये। ऐसे जोर का Rush हुआ कि Edwards के Back उसे न सम्भाल सके। गेंद उछलती हुई [illegible] में [illegible]। यह खेल समाप्त के अन्तिम मिनट का अन्तिम second था। गोल होते ही खेल समाप्त की सीटी भी बज गई। यदि इस अन्तिम second को Edward वाले सम्भाल लेते तो वे उसी दिन विजित होकर final में पहुंच जाते परन्तु उनके दुर्भाग्य के जिससे कि अन्तिम क्षण में वे हार गये। मैच drawn होगया। अगले दिन final को स्थगित करके फिर इन का मैच रखा गया। इस दिन भी खेल में खूब जोश रहा। Edwards की खेल बहुत ही सफाई की तथा combined थी। लोगों ने उनकी खेल बहुत पसन्द की। Youngs के दावों में न बहुत सफाई थी न चालाकी। वे ~~[illegible]~~ जवान थे व तथा जोर पर खेल रहे थे। उस दिन किसी पर भी कोई गोल न हुआ और फिर मैच drawn होगया। ६ फरवरी को प्रातः काल फिर मैच रखा गया। ~~[illegible]~~ मैच ७-१० पर प्रारम्भ हुआ। इस प्रातः काल के समय में भी [illegible] रसियों की भीड़ आई थी। Youngs ने अपने खिलाड़ी फिर बदले। रुड़की से एक अंग्रेज खिलाड़ी मंगाया गया था। खेल बड़े जोर में हुई। कभी गेंद Youngs की ओर तो कभी Edwards की ओर। सारे समय में यही होता रहा। अन्त में १ घण्टा समय भी समाप्त होगया और इस के बाद रोज की तरह फिर extra time दिया गया। इस समय में दोनों पार्टियों के दम फूल उठे थे। १५-१५ मिनट दिये गये।

परन्तु विजय की लालसा ने तब कुछ भुला दिया। खेल फिर आरम्भ हुआ।
देखते ही Edwards ने एक गोल चढ़ा दिया। उनके उत्साह में हुवे दर्शक
उछल पड़े। करतल ध्वनि तथा शाबाशी की आवाज से आकाश गूंज
उठा। उनसे मुकाबला करने वाले Youngs के दिल बैठ गया।
इसी half में एक गोल और चढ़ गया।
इन तीन दिनों से चलायमान विजय ने आखिर Edwards का ही साथ
पकड़ा। मैच समाप्त हो गया। Youngs को सान्त्वना दी गई। हार जीत
तो प्रकृति का नियम है। जो दो मुकाबले में कोई न कोई तो हारेगा ही
उनमें दुख किस बात का।

अब 6 सितम्बर को फिर प्रतीक्षित final के साथ
साथ Edwards तथा गुरुकुल 'ग' के भाग्यों का भी
final था। हरिद्वार के प्रतिष्ठित अभ्यागत तथा खेल की शौकीन जनता
अत्यधिक संख्या में उपस्थित थी। चारों ओर से ग्राउंड भर चुका था।
गुरुकुल 'ग' की खेल देखने को कौन उत्सुक न होगा। 3 बजे बैंड
बजा। भाग्य की घड़ी सामने उपस्थित हो चुकी थी। खिलाड़ियों के दिलों
में तरह तरह के विचार होने लगे। गुरुकुल के सामने कुलमाता की शान का सवाल
उपस्थित है। उस उदार दयालु परमात्मा के आशीर्वाद को सत्य सिद्ध करने
का सवाल है और Edwards के सामने अपनी मान मर्यादा का। बैंड
समाप्त होते ही Referees ने सीटी बजाई। गगनभेदी आवाजों से दोनों
पार्टियों का स्वागत हुआ। खेल प्रारम्भ हुआ। Edwards ने धावा बोला
परन्तु व्यर्थ गया। इस के बाद गुरुकुल ने धावा बोला। बड़ी देर तक गेंद
इधर उधर मंडराती रही। प्रतिद्वन्द्वियों के होश गुम हो गये। वे इतना श्र
हो कर अपनी खेल भूल ही गये थे। गुरुकुल ने गोल के short
मारे पर सब बाहर गये। इसी प्रकार half time बीता और खेल फिर
पूर्ववत् शुरू हुई। गुरुकुल 'ग' की खेल ऐसी जमी हुई थी कि Edwards
को आगे बढ़ने का फिर बिल्कुल मौका न मिला। गुरुकुल का हर खिलाड़ी
बराबर जोश दिखा रहा था। Edwards आत्म रक्षा पर
तुली थी। आखिर खेल समाप्ति का मौका आने लगा। Edwards की
भाग्य परीक्षा अन्तिम second में ही होनी थी। अन्तिम मिनट उपस्थित हुआ
कि गुरुकुल ने एक गोल कर दिया। गोल की सीटी के साथ साथ खेल भी
समाप्त हो गया। विजय लक्ष्मी ने कुलमाता के वीर पुत्रों को ही जयमाला पहिनाई।

([illegible] जी द्वारा)

निवेदन

आजकल के प्रकाशन में हमें सब तरफ से पूर्ण सहयोग मिलता रहा है। ऐसी अवस्था में हमारी इच्छा थी कि हम "आजकल" को काफी सुव्यवस्थित रूप से कुल के सामने पेश करें परन्तु इतने थोड़े समय में परीक्षा में अत्यधिक व्यस्त रहने तथा कुल सम्बन्धी कई उलझनों को सुलझाने में लगातार लगे रहने से हम इस ओर विशेष ध्यान नहीं दे पाये हैं इसका हमें हार्दिक दुःख है। आशा है कुल भाई हमारी इस लाचारी को ध्यान में रखते हुए उसकी त्रुटियों पर विशेष ध्यान न देंगे।

धन्यवाद

इस पत्रिका का प्रकाशन करते हुए हमें यह लिखते हुए अत्यन्त प्रसन्नता है कि जिस जिस भाई से अथवा उपाध्याय महोदय से हम ने सहायता प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की उन सब ने अपना ही काम समझ कर इस में सहायता दी। अतः वे सब हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। फिर भी श्री सत्यपाल जी, श्री वेदव्रत जी १२. तथा श्री सत्यभूषण जी का विशेष धन्यवाद करते हैं जिन्हों ने पूरी लगन से सहायता की।

005704

लिखते लिखते -

हम नवीन निर्वाचित क्रीड़ामन्त्री जी का हृदय से स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि वे अपने कार्य को उत्साह, साहस तथा धैर्यपूर्वक सम्भालेंगे।

भाई जगदीश जी को इस पद पर देख कर इन्द्रप्रस्थ का क्रीड़ाकाल स्मरण हो आता है।

हम भूतपूर्व क्रीड़ामन्त्री ब्र० देवकीर्ति जी को, उन के उत्साह लगन तथा श्रद्धानन्द-दण्ड-सान्मुख्य को सफलता पूर्वक करवाने और क्रीड़ाक्षेत्र बनवाने आदि प्रशंसनीय कार्यों के लिए हृदय से बधाई देते हैं।